सामायिक विद्या

(सामायिक संबंधी पाठों का एक अनूठा संकलन)

रचयिता एवं संकलक
बुंदेली संत मुनि श्री सुव्रतसागर जी महाराज

प्रकाशक
श्री जैनोदय विद्या समूह

कृति	:	सामायिक विद्या
आशीर्वाद	:	संयम स्वर्ण महोत्सव मण्डित आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज
कृतिकार	:	बुंदेली संत मुनि श्री सुव्रतसागरजी महाराज
संयोजक	:	बा. ब्र. संजय भैयाजी, मुरैना
संस्करण	:	प्रथम, 2019
आवृत्ति	:	1100
लागत मूल्य	:	20/-
प्राप्ति स्थान	:	बा. ब्र. संजय भैयाजी, मुरैना, 94251-28817
मुद्रक	:	विकास आफसेट, भोपाल
पुण्यार्जक	:	**श्री जैन मित्र मण्डल एवं नारी चेतना मण्डल श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन पंचायती मंदिर माधव नगर, फ्री गंज, उज्जैन (म.प्र.)**

अन्तर्भाव

सामायिक एक आंतरिक प्रक्रिया है। प्रत्येक आत्मार्थी को सामायिक की प्रक्रिया से अपनी आत्मा का शोधन अवश्य ही करना चाहिये।

जो गृहस्थ प्रतिदिन इस प्रक्रिया से नहीं जुड़ पाते उन्हें कम से कम अष्टमी, चतुर्दशी, अष्टाह्निक, दशलक्षण जैसे पर्व के दिनों में, विधानों में 48 मिनिट सामायिक एवं ध्यान अवश्य करना चाहिये।

इसी भावना को लेकर इस पुस्तक के संयोजन की भावना जागृत हुई। भावना रखी **आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागरजी महाराज** के सुयोग्य शिष्य **मुनि श्री सुव्रतसागर जी महाराज** के चरणों में और उनसे मार्गदर्शन एवं विषय वस्तु प्राप्त कर भावना साकार हुई। सभी इस सामायिक की विधा से जुड़कर आत्मकल्याण की ओर अवश्य अग्रसर हों। इसी मंगल भावना के साथ...

बा. ब्र. संजय, मुरैना

विषय सूची (INDEX)

विषय	पृ. सं.
(मुनि श्री सुव्रतसागरजी द्वारा रचित)	
1. सामायिक विधि	4
2. मंगल मंत्र	5
3. मंगल भावना	5
4. लघु प्रतिक्रमण	6
5. आचार्य वंदना	8
6. स्वयंभू स्तोत्र (हिन्दी)	11
7. गुरु वंदना	15
8. आलोचना पाठ	16
9. बारह भावना	18
10. सामायिक पाठ (द्वात्रिंशतिका)	21
11. स्वरूप संबोधन	24
12. रत्नाकर पच्चीसी	28
13. समाधि भावना	33
14. आत्म भावना	34
15. महावीराष्टक स्तोत्र (हिन्दी पद्यानुवाद)	35
16. गोम्मटेश अष्टक–1	37
17. गोम्मटेश अष्टक–2	38
18. जिनवाणी स्तुति	39
(अन्य संकलित रचनायें)	
19. सामायिक पाठ	40
20. भावना बत्तीसी	43
21. क्षमा प्रार्थना	48
22. आलोचना–पाठ	49
23. बारह भावना	52
24. बारह भावना (मंगतराय जी)	53
25. ध्यान सूत्र	58
26. चिंतनीय भावना	59
27. अमूल्य तत्त्व विचार	61
28. वैराग्य भावना	62
29. मेरी–भावना	65
30. इष्ट प्रार्थना	67
31. समाधि भावना	68
32. मेरी विनती	69
33. सम्मेद–शिखर–वंदना	70
34. महावीराष्टक स्तोत्र	73
35. सरस्वती स्तोत्र	74
36. वीतराग स्तोत्र	75
37. पंच महागुरु भक्ति (प्राकृत)	76
38. पञ्चमहागुरुभक्ति(हिन्दी)	77
39. योगिभक्ति(हिन्दी)	78

– – –

सामायिक विधि

सर्व प्रथम खड़े होकर इस प्रकार दिग्वंदना करें–

हे भगवन्! पूर्व दिशा में समस्त अरिहंतजी, सिद्धजी, आचार्यजी, उपाध्यायजी, साधुजी, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य, जिनचैत्यालय हैं उन सबको मेरा मन–वचन–काय से बारंबार नमस्कार हो–3

(नौ बार णमोकार करके गवासन से नमस्कार)

हे भगवन्! दक्षिण दिशा में समस्त अरिहंतजी, सिद्धजी, आचार्यजी, उपाध्यायजी, साधुजी, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य, जिनचैत्यालय हैं उन सबको मेरा मन–वचन–काय से बारंबार नमस्कार हो–3

(नौ बार णमोकार करके गवासन से नमस्कार)

हे भगवन्! पश्चिम दिशा में समस्त अरिहंतजी, सिद्धजी, आचार्यजी, उपाध्यायजी, साधुजी, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य, जिनचैत्यालय हैं उन सबको मेरा मन–वचन–काय से बारंबार नमस्कार हो–3

(नौ बार णमोकार करके गवासन से नमस्कार)

हे भगवन्! उत्तर दिशा में समस्त अरिहंतजी, सिद्धजी, आचार्यजी, उपाध्यायजी, साधुजी, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य, जिनचैत्यालय हैं उन सबको मेरा मन–वचन–काय से बारंबार नमस्कार हो–3

उसके बाद एक नियत स्थान पर बैठकर इस प्रकार प्रतिज्ञा करें–

हे भगवन्! जब तक मैं सामायिक अवस्था में रहूँगा तब तक शरीर पर जितना परिग्रह है उसे छोड़कर शेष का त्याग करता हूँ।

हे भगवन्! जब तक मैं सामायिक अवस्था में रहूँगा तब तक सभी आरंभ–सारंभ का एवं गमनागमन का त्याग करता हूँ।

हे भगवन्! जब तक मैं सामायिक अवस्था में रहूँगा तब तक सामायिक शब्दों को छोड़कर शेष चर्चाओं का त्याग कर सामायिक ग्रहण करता हूँ।

मंगल मंत्र

धर्म चाहने वाले बोलें, ओम् णमो अरिहंताणं।
मोक्ष चाहने वाले बोलें, ओम् णमो सिद्धाणं।
दीक्षा चाहने वाले बोलें, ओम् णमो आइरियाणं।
शिक्षा चाहने वाले बोलें, ओम् णमो उवज्झायाणं।
शांति चाहने वाले बोलें, ओम् णमो लोए सव्वसाहूणं॥
जिनशासन के दर्शक बोलें, ऐसो पञ्च णमोयारो।
नवदेवों के सेवक बोलें, सव्व पावप्पणासणो।
सिद्धों के आराधक बोलें, मंगलाणं च सव्वेसिं।
शुद्धातम के भावक बोलें, पढमं होई मंगलम्॥

मंगल भावना

तेरा मंगल मेरा मंगल, सबका मंगल होवे।
सुखिया होवे सारी दुनियाँ, कोई दुखी न होवे॥
कण-कण मंगल क्षण-क्षण मंगल, जन-जन मंगल होवे।
हे प्रभु! निजमंगल के पहले, जग का मंगल होवे॥1॥तेरा...
जिन माँ बाबुल ने जन्मा है, उनका मंगल होवे।
जिन बन्धु ने पाला पोषा, उनका मंगल होवे॥
जिन मित्रों ने हमें सम्हाला, उनका मंगल होवे।
जिन गुरुओं ने ज्ञान दिया है, उनका मंगल होवे॥2॥ तेरा...
जो धरती नभ आश्रय देते, उनका मंगल होवे।
जिस जलवायु से जीते हैं, उसका मंगल होवे॥
जिस अग्नि से जीवन चलता, उसका मंगल होवे।
जिन तरुओं से भोजन मिलता, उनका मंगल होवे॥3॥ तेरा...
हम जिस दुनियाँ में रहते हैं, उसका मंगल होवे।
हम जिस भारत देश में रहते, उसका मंगल होवे॥
हम जिस राज्य प्रान्त में रहते, उसका मंगल होवे।
हम जिस नगर शहर में रहते, उसका मंगल होवे॥4॥ तेरा...

===

लघु प्रतिक्रमण

हे भगवन्!, हे जिनेन्द्र देव!, हे अरिहंत प्रभु! हे पंचपरमेष्ठी! हे नव देवता भगवन्!

आपके श्री चरणों में बारम्बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!

हे भगवन्! मैंने अब तक जितने भी पाप, अपराध, दोष किये हों या जाने अनजाने में हो गये हों उन सभी दोषों की क्षमायाचनापूर्वक प्रतिक्रमण करना चाहता हूँ।

हे भगवन्! पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक रूप एकेन्द्रिय, द्वि-इन्द्रिय, त्रि-इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी-संज्ञी पंचेन्द्रिय आदि त्रस-स्थावर किसी भी जीव का घात किया, कराया हो, करने वाले की अनुमोदना की हो, मन-वचन-काय से जो भी दोष लगा हो वह मिथ्या हो।

हे भगवन्! हिंसा-झूठ-चोरी-कुशील-परिग्रह रूप पाँच पापों में, जुआ-माँसभक्षण-मद्यपान-शिकार-चोरी-परस्त्रीसेवन-वेश्यागमन रूप सप्त व्यसनों में, क्रोध-मान-माया-लोभ, मन-वचन-काय, समरंभ-समारंभ-आरंभ, कृत-कारित-अनुमोदना से जो भी दोष लगा वह मिथ्या हो।

हे भगवन्! मद्य-माँस-मधुत्याग एवं पंच उदम्बर फलों के त्याग रूप अष्टमूलगुण का पालन करते हुये मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमोदना से जो भी दोष लगे हों वे सब मिथ्या हों।

हे भगवन्! तीन कुलाचार का पालन करते हुये देवदर्शन करने में-रात्रिभोजन त्याग में, पानी छानने की विधि में मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमोदना से जो भी दोष लगे हों वे सब मिथ्या हों।

हे भगवन्! वीतरागी देव-जिनशास्त्र-दिगम्बर गुरु, पंचपरमेष्ठी, नवदेवताओं की विनय करने में प्रमाद वश, अज्ञानतावश मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमोदना से जो भी दोष लगे हों वे सब मिथ्या हों।

हे भगवन्! मेरे द्वारा दिन भर में आने-जाने में, उठने-बैठने में, खाने-पीने में, बोलने-चालने में, रखने-उठाने में, लेने-देने में में, सोने-जागने में, पढ़ने-लिखने में, घर-गृहस्थी के कार्यों में, नौकरी-धंधे में, खेती-वाड़ी में, भवन-वास्तु में, टी.व्ही.-मोबाइल-कम्प्यूटर आदि भौतिक साधनों के प्रयोग में और भी जो जाने-अनजाने में प्रमाद वश, अज्ञानतावश मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमोदना से जो भी दोष लगे हों वे सब मिथ्या हों।

मैं अपने समस्त प्रत्यक्ष-परोक्ष दोषों की आलोचना करता हूँ, निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ, प्रतिक्रमण करता हूँ, प्रायश्चित्त करता हूँ, कायोत्सर्ग करता हूँ। (नौ बार नमोकार जाप)

हे भगवन्! जब तक मुझे मोक्ष की प्राप्ति ना हो तब तक आपके चरणकमल मेरे हृदय में मेरा हृदय आपके चरणों में लीन रहे ऐसा भावना भाता हूँ।

हे भगवन्! मेरे दुखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि (रत्नत्रय) की प्राप्ति हो, सुगति गमन हो, समाधिमरण हो, जिनगुण की प्राप्ति हो, ऐसी मेरी भावना है।

अंत में यही भावना भाता हूँ-

तेरा मंगल मेरा मंगल, सबका मंगल होवे।
सुखिया होवे सारी दुनियाँ, कोई दुखी न होवे॥
कण-कण मंगल क्षण-क्षण मंगल, जन-जन मंगल होवे।
हे प्रभु! निजमंगल के पहले, जग का मंगल होवे॥

===

आचार्य वंदना

लघु सिद्ध भक्ति

नमोऽस्तु पौर्वाह्निक/अपराह्निक आचार्य-वन्दना-क्रियायां, पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकलकर्मक्षयार्थं,भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री-सिद्धभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(9 बार णमोकार)

सम्मत्त-णाण-दंसण-वीरिय-सुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलहु-मव्वावाहं,अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं॥ 1॥
तव-सिद्धे, णय-सिद्धे, संजम-सिद्धे,चरित्त-सिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य,सिद्धे सिरसा णमस्सामि॥ 2॥

इच्छामि भंते। सिद्ध-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं, अट्ठविह-कम्म-विप्प मुक्काणं-अट्ठगुण-संपण्णाणं, उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तव-सिद्धाणं, णय-सिद्धाणं, संजम-सिद्धाणं, चरित्त-सिद्धाणं, अतीदा-णागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं, सव्व-सिद्धाणं, णिच्च-कालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं समाहि-मरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

लघु श्रुत भक्ति

नमोऽस्तु पौर्वाह्निक/अपराह्निक श्री आचार्य-वन्दना-क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकलकर्मक्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री-श्रुतभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(9 बार णमोकार)

कोटिशतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्य-शीतिस्-त्र्यधिकानि चैव।
पञ्चाश-दष्टौ च सहस्र-संख्य-मेतच्-छ्रुतं पञ्च-पदं नमामि॥1॥

अरहंत - भासियत्थं - गणहर - देवेहिं गंथियं सम्मं।
पणमामि भत्ति-जुत्तो, सुद-णाण-महोवहिं सिरसा॥ 2॥

इच्छामि भंते ! सुद-भत्ति-काउसग्गो कओ तस्सालोचेउं-अंगोवंग-पइण्णय-पाहुडय-परियम्मि-सुत्त पढमाणि-ओग-पुव्वगय-चूलिया चेव-सुत्तत्थय-थुइ-धम्म-कहाइयं, सया णिच्च-कालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं जिणगुण-संपत्ति होउ-मज्झं।

लघु आचार्य भक्ति

नमोऽस्तु पौर्वाह्णिक/अपराह्णिक आचार्य-वन्दना-क्रियायां, पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकलकर्मक्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री-आचार्य भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(9 बार णमोकार)

श्रुतजलधि-पारगेभ्यः,स्व-पर-मत-विभावना-पटुमतिभ्यः।
सुचरित-तपोनिधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो-गुण-गुरुभ्यः॥1॥
छत्तीस-गुण-समग्गे, पंच-विहाचार-करण-संदरिसे।
सिस्सा-णुग्गह-कुसले, धम्मा-इरिये सदा वंदे॥2॥
गुरु-भत्ति-संजमेण य, तरंति संसार-सायरं घोरम्।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मण-मरणं ण पावेंति॥3॥
ये नित्यं-व्रत-मंत्र-होम-निरता, ध्यानाग्नि-होत्राकुलाः।
षट्कर्माभिरतास्-तपो-धनधनाः,साधु-क्रियाः साधवः॥4॥
शील-प्रावरणा-गुण-प्रहरणाश्-चन्द्रार्क-तेजोऽधिकाः।
मोक्ष-द्वार-कपाट-पाटन-भटाः, प्रीणंतु मां साधवः॥5॥
गुरवः पान्तु नो नित्यं ज्ञान-दर्शन-नायकाः।
चारित्रार्णव-गम्भीरा, मोक्षमार्गोपदेशकाः॥6॥

इच्छामि भंते! आइरिय भत्ति-काउसग्गो कओ, तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं, पञ्च-विहाचाराणं, आइरियाणं, आयारादि-सुद-णाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, ति-रयण-गुण-पालण-रयाणं सव्वसाहूणं, णिच्च-कालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं-समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

(नोट- सुबह 18 बार एवं संध्या आचार्य वंदना में 36 बार णमोकार मंत्र पढ़े)

विद्यासागर विश्ववंद्य श्रमणं, भक्त्या सदा संस्तुवे,
सर्वोच्चं यमिनं विनम्य परमं, सर्वार्थसिद्धि-प्रदम्।
ज्ञान-ध्यान-तपोभिरक्त-मुनिपं, विश्वस्य विश्वाश्रयं,
साकारं-श्रमणं-विशाल-हृदयं, सत्यं-शिवं-सुन्दरं॥

(शार्दूल विक्रीड़ित)

श्री विद्यामुनि धर्मरूप सुगुरु, र्विद्या नमामि प्रियं।
विद्या नाशति सर्व कर्म दुःखान्, विद्ये नमो भगवते॥
विद्योऽपैति सुखी भवन्ति न जनाः, विद्यो यशो वर्द्धतु।
विद्याद्रौस्वरतिर्ददाति सुपदं, हे विद्य! माम् पालय॥

(यहाँ विद्या शब्द का प्रयोग आकारान्त पुल्लिंग के रूप में किया गया है)

वैरागी विजयी विशाल हृदयी, ज्ञानी महात्मा प्रभु।
तेजस्वी तप त्याग तीर्थ तपसी, त्यागी जितेन्दी गुरु॥
कल्याणी सदयी उदार विनयी, दाता गुरू को भजूँ।
विद्यासागर श्रेष्ठ संत गुरु को, पूँजू नमोऽस्तु करूँ॥

===

स्वयंभू स्तोत्र (हिन्दी)

(ज्ञानोदय)

जय हो! जय हो! **वृषभनाथ** की, हुये प्रथम जो तीर्थंकर।
सागर तक वसुधा को तजकर, बने स्वयंभू क्षेमंकर॥
परम दयालु निर्दय बनकर, किये भस्म मोहादिक को।
निकट आपके आने हम भी, करें नमोस्तु चरणादिक को॥ 1॥

जय हो! जय हो! **अजितनाथ** की, रिपु-विजयी मृत्युंजय की।
जिन-प्रभाव से बंधुवर्ग ने, शत्रु धरा निज-पर जय की॥
सार्थक नाम अमंगल हर्त्ता, भव्य कमल विकसित करते।
अपराजित! अपराजित बनने, तुमको नमोस्तु हम करते॥ 2॥

जय हो! जय हो! **शंभवप्रभु** की, दुखहारक सुखकारक की।
भोग-विषय तृष्णा रोगों के, हर्त्ता आत्म चिकित्सक की॥
गुण गाने में दक्ष न कोई, तो गुणगान करें क्या हम?
अहंकार ममकार मिटाने, करते नमोस्तु फिर भी हम॥ 3॥

जय हो! जय हो! **अभिनंदनप्रभु**, अंतर-बाह्य निरम्बर की।
क्षमा सखी सह दया-वधू ले, चुन ली राह दिगम्बर की॥
नश्वर तन में कुछ ना अपना, आसक्ति तज हित होता।
तत्त्वज्ञान को शाश्वत सुख को, नमोस्तु करने मन होता॥ 4॥

जय हो! जय हो! **सुमतिनाथ** की, रिद्धि-सिद्ध के दायक की।
परम भेद-विज्ञानी सार्थक, आत्म ज्योति के नायक की॥
तजे अपेक्षा और उपेक्षा, दिशा-दशा को जो बदलें।
अन्तर दीप जलाने हम तो, जिनको नमोस्तु भी कर लें॥ 5॥

जय हो! जय हो! **पद्मनाथ** की, सुंदर निर्मल सूरत की।
हुये भव्य कमलों में शोभित, सूरज सी चिन्मूरत की॥
सरस्वती लक्ष्मी शांति के, योग सर्व हित जो धरते।
चरण कमल भज, मोक्षमहल को, पल पल नमोस्तु हम करते॥ 6॥

जय हो! जय हो! **सुपार्श्वनाथ** की, जो अविनाशी स्वस्थ हुये।
भोग प्रयोजन नहीं हमारा, भोगों से तो कष्ट हुये॥
सभी मृत्यु से डरते लेकिन, माँ सी तुम करते रक्षा।
निजी प्रयोजन सिद्ध करें हम, इससे नमोस्तु की इच्छा॥ 7॥

जय हो! जय हो! **चन्द्रनाथ** की, जिनसा तप-धन त्याग नहीं।
चंदा जैसे शीतल हैं पर, चंदा जैसा दाग नहीं॥
रहे सूर्य से बहु तेजस्वी, पर सूरज सम आग नहीं।
आग दाग हर वीतराग को, नमोस्तु करना राग नहीं॥ 8॥

जय हो! जय हो! **सुविधिनाथ** की, सुविधि कहें जो शिवपथ की।
अनेकान्त का दया धर्म दे, शुद्धातम उद्घाटित की॥
क्रोध वैर एकांत धर्म तज, जिन-शासन जीवंत किया।
शत्रु विरोध त्यागने हमने, नमोस्तु जय-जयवंत किया॥ 9॥

जय हो! जय हो! **शीतलप्रभु** की, करें चराचर शीतल जो।
जो शीतलता प्रभु से मिलती, चन्दन चंदा में ना वो॥
विषय काम धन सुत तृष्णा की, ज्वाला गंगाजल न हरे।
सम्यक् श्रम से आत्मप्रीति को, नमोस्तु कर भी मन न भरे॥ 10॥

जय हो! जय हो! **श्रेयनाथ** की, विघ्न हरें जो राह करें।
मधुर वचन से मोक्षमार्ग दें, ज्ञानावरणी आह हरें॥

न्याय-बाण के ब्रह्म-अस्त्र से, आतम के सम्राट हुये।
कष्ट विघ्न बाधाएँ हरने, नमोस्तु कर निज ठाठ हुये॥ 11॥
जय हो! जय हो! **वासुपूज्य** की, इन्द्र-पूज्य जग नायक की।
जिन्हें न पूजा निंदा से कुछ, किन्तु शुद्धि हो पूजक की॥
सिन्धु पुण्य में बिन्दु पाप सम, पूजक की सावद्य क्रिया।
फिर भी 'पुण्यफला' बनने को, नमोस्तु बारम्बार किया॥ 12॥
जय हो! जय हो! **विमलनाथ** की, जो निज-पर उपकारक हैं।
अंतरंग बहिरंग दोष के, जो निष्पृह हो हारक हैं॥
विमल ज्योति से कर्म पटल को, पूर्ण हटाने के अवसर।
आत्म सूर्य को उदित कराने, करते नमोस्तु हम झुककर॥ 13॥
जय हो! जय हो! **अनंतनाथ** की, अनंत गुण भण्डार भरे।
तन की श्रम जल भोग नदी को, तप रवि से परिहार करे॥
भक्त-पुरुष भव पार उतरते, अभक्त जन भव दुखी हुये।
दुखी न हों भव पार उतरने, कर नमोस्तु हम सुखी हुये॥ 14॥
जय हो! जय हो! **धर्मनाथ** की, धर्म-तीर्थ प्रतिपादक की।
भव्य सितारों के जो चंदा, कर्म-भर्म संहारक की॥
नाथ! आपकी चेष्टाओं के, दर्शन हुये प्रसन्न हुये।
देही हम भी बनें विदेही, अतः नमोस्तु कर धन्य हुये॥ 15॥
जय हो! जय हो! **शांतिनाथ** की, प्रजा सुरक्षक राज हुये।
धार सुदर्शन चक्र विजय कर, चक्रवर्ति अधिराज हुये॥
धर्मचक्र धर समाधिचक्र से, कर्मचक्र हर शुद्ध हुये।
विश्वशांति को आत्मशांति को, हम नमोस्तु करबद्ध हुये॥ 16॥

जय हो! जय हो! **कुन्थुनाथ** की, तीन-तीन पद धारी की।
विषयाशा तज बने तपस्वी, लोकालोक निहारी की॥
जीव मात्र के परम हितैषी, कष्ट निवारक शिवधामी।
करुणा कर करुणाकर! बनने, है नमोस्तु है प्रणमामि॥ 17॥

जय हो! जय हो! **अरहनाथ** की, तृष्णा जल जो सुखा दिये।
मोह पाप यम गर्व सैन्य का, डमरू बाजा बजा दिये॥
कामदेव चक्री तीर्थंकर, रत्नत्रय धर मुक्त हुये।
विद्यारथ से मुक्तिपथ को, हम नमोस्तु में युक्त हुये॥ 18॥

जय हो! जय हो! **मल्लिनाथ** की, चमत्कार उद्धार किये।
कर्मेन्धन को ध्यान अग्नि से, जला आत्म शृंगार किये॥
सर्व जगत् सर्वज्ञ-भक्त बन, नम्रीभूत शरण आगम।
मोहमल्ल की शल्य हरण को, करें चरण में नमोस्तु हम॥ 19॥

जय हो! जय हो! **मुनिसुव्रतप्रभु**, नाथ अनाथों के स्वामी।
मुनिपुंगव जो नक्षत्रों के, बीच चाँद सम कल्याणी॥
मोरकण्ठ सम देह सुगंधित, गये मोक्ष शाश्वत सुख में।
मोह शनीश्चर संकट हरने, नमोस्तु करके हम खुश हैं॥ 20॥

जय हो! जय हो! **नमिनाथ** की, भक्तों के आराध्य रहे।
चित्परिणाम शुद्ध करने को, साधक के शिव साध्य रहे॥
श्रायस पथ पर बने दयालु, निःश्रेयस निर्वाण रहे।
आप सुनो या नहीं सुनो पर, हम तो नमोस्तु कर हि रहे॥ 21॥

जय हो! जय हो! **नेमिनाथ** की, नीलकमल से नैन रहे।
णमो जिणाणं, णमो जिणाणं, चरण ताकते जैन रहे॥

राजुल राज-रमा के त्यागी, आत्म रसिक गिरनार चढ़े।
निज अर्हंत अवस्था पाने, कर नमोस्तु हम पाँव पड़ें॥ 22॥
जय हो! जय हो! **पार्श्वनाथ** की, अद्वितीय पौरुष जिनका।
वज्रपात आधी तूफां से, बाल न बाँका हो जिनका॥
लोहा स्वर्ण बनाते पारस, पर पारस पारस करते।
कर्म कीच हर पारस बनने, नमोस्तु सादर हम करते॥ 23॥
जय हो! जय हो! **महावीर** की, जो जग में विख्यात हुये।
जिनके सूत्र जियो जीने दो, अब भी तो जयवंत हुये॥
प्रातिहार्य पा जिनशासन का, शंख फूँक ऐलान करें।
आप रहो या नहीं रहो हम, कर नमोस्तु सम्मान करें॥ 24॥
ये चौबीसों तीर्थंकर प्रभु, मुक्ति वल्लभा कहलाते।
नवग्रह उनका क्या कर लें जो, कर्म परिग्रह नशवाते॥
सो '**सुव्रत**' जग कार्य छोड़कर, चौबीसी को नमन करो।
अब तक जो शुभ कार्य किया ना, वो करके निज रमण करो॥ 25॥

===

गुरु वंदना

यूँ तो अपनी गुरु भक्ति का, इस दुनियाँ में अंत नहीं।
और सुनो धरती अंबर में, जिनवाणी सम ग्रंथ नहीं॥
णमोकार सम मंत्र नहीं है, मोक्षमार्ग सम पंथ नहीं।
संयमस्वर्ण महोत्सव धारी, **विद्यागुरु** सम संत नहीं॥

(दोहा)

माथ रहे गुरु पाद में, हिय में गुरु का ध्यान।
हाथ करें गुरु वंदना, वचन करें गुरु गान॥

===

आलोचना पाठ

(दोहा)

चौबीसों प्रभु को नमूँ, परमेष्ठी जिनराज।
कर लूँ निज आलोचना, आत्म शुद्धि के काज ॥1 ॥

(सखी)

हे परम दयालू भगवन्, मैं करके नमोऽस्तु दर्शन।
चरणों में अरज लगाऊँ, कैसे निज दोष नशाऊँ ॥2 ॥
मैं होकर क्रोधी मानी, कपटी लोभी अज्ञानी।
दिन भर चर्या करने में, आना-जाना करने में ॥3 ॥
पढ़ने-लिखने लड़ने में, निंदा ईर्ष्या करने में।
सुख-दुख रोने-हँसने में, या छींक जँभाई खांसी में ॥4 ॥
सोने-जगने सपने में, मल-मूत्र थूक तजने में।
चूल्हा चक्की चौका में, बर्तन झाड़ू पौंछा में ॥5 ॥
भोजन जल-बिलछानी में, धोने व न्हवन पानी में।
शैम्पू सोड़ा साबुन में, फैशन अंजन-मंजन में ॥6 ॥
या टी. व्ही. मोबाइल में, या नेट मनोरंजन में।
कृषि नौकरी धंधे में, जो हुये व्यसन अंधे में ॥7 ॥
या दवा कीटनाशक में, बिजली मकान पावक में।
हिंसा असत्य चोरी में, अब्रह्म परिग्रह ही में ॥8 ॥
फल पंच उदम्बर खाके, या मद्य-माँस-मधु पाके।
जो नहीं मूलगुण धारे, बाईस अभक्ष्य अहारे ॥9 ॥
या नित्य देव दर्शन में, या कभी रात्रि भोजन में।
जल पिया कभी अनछाना, त्रय [1]कुलाचार न जाना ॥10 ॥

जो लेकर नियम न पाले, प्रतिकूल धरम के चाले।
या देव-शास्त्र-गुरुओं में, या अपने या औरों में ॥11॥
मैंने कर पापाचारी, जो करुणा ना हो धारी।
उससे जो जीव मरे हों, या पीड़ित घात करे हों ॥12॥
या पर से पाप कराये, या अनुमोदन मन भाये।
वह मन-वच-तन के द्वारे, टल जायें कषाय सारे ॥13॥
पच्चीस दोष दर्शन के, या ज्ञान चरित आगम के।
दिन रात कभी भी कैसे, जाने अनजाने जैसे ॥14॥
जो पाप हुये हों मुझसे, प्रभु आप बचालो उनसे।
धिक्! धिक्! धिक्कारे मुझको, प्रभु क्षमादान दो मुझको ॥15॥
सीता द्रोपदि या मैंना, या अंजन चंदन मैं ना।
पर नाथ! भक्त तेरा हूँ, सो शुद्धि आप सम चाहूँ ॥16॥
बस बोधि समाधि हो मेरी, हो छत्रच्छाया तेरी।
कर 'सुव्रत' अब ना देरी, प्रभु! शरण न छूटे तेरी ॥17॥

(दोहा)

वीतराग निर्दोष हैं, परमेष्ठी जिनराज।
बन जाऊँ निर्दोष मैं, सो नमोऽस्तु हो आज॥

===

बारह भावना

(शुद्ध गीता)

चलो चेतन यहाँ क्या है?, हमें अब मोक्ष पाना है।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

1. अनित्य भावना

गये राजा गये राणा, सभी को एक दिन मरना।
अमर कोई नहीं जग में, अथिर संसार का झरना॥
हमें फिर मौत न लूटे, भरम ये तो मिटाना है।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

2. अशरण भावना

गुरु चेला सखा बन्धु, किला सेना सुरक्षाएँ।
दवा विद्या हवन वैभव, नहीं कुछ काम में आएँ॥
बचायें ना मरण से ये, धरम साँचा ठिकाना है।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

3. संसार भावना

महासंसार वन में हम, शुभाशुभ कर्म-फल पाते।
भटकते चार गतियों में, कहीं सुख लेश ना पाते॥
मिले सुख पाँचवी गति में, वही सत्सार धामा है।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

4. एकत्व भावना

मरें जन्में अकेले हम, भटकते हैं अकेले ही।
अकेले कर्म सब करते, सहें सुख दुख अकेले ही॥
अकेली आतमा जग में, अकेले मोक्ष जाना है।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

5. अन्यत्व भावना

परायी चीज को अपनी, कहें अज्ञान से मोही।
इन्हीं से कष्ट पाते वे, इन्हीं को त्यागते योगी॥
कहें किसको सगा अपना, सगा जब तन गँवाना है।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

6. अशुचि भावना

मनोहर देह बाहर पर, पिटारा मैल का अन्दर।
बहे नव द्वार से मैला, लगे फिर भी हमें सुन्दर॥
तजें अनुराग तो सुख का, यहीं बनता खजाना है।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

7. आस्रव भावना

शुभाशुभ भाव योगों से, शुभाशुभ कर्म आते हैं।
शुभाशुभ कर्म आतम को, दुखी करके घुमाते हैं॥
शुभाशुभ को समझ खुद को, निरास्रव बुध बनाना है।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

8. संवर भावना

रही छेदों सहित नैय्या, भरे पानी डुबाती है।
लगे गर डाँट मोरी में, वही भव पार जाती है॥
शुभाशुभ आगमन रोके, धरम संवर सुहाना है।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

9. निर्जरा भावना

पकाते पाल से फल ज्यों, सुखाते ताप से पानी।
सकल जब निर्जरा हो तो, मिले मुक्ति महारानी॥
हमें भी कर्म तप द्वारा, पकाकर के झड़ाना है।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

10. लोक भावना

नहीं कर्त्ता नहीं धर्त्ता, नहीं कोई चलाता है।
पुरुष के कर कटी पर ज्यों, सहज यों लोक गाथा है॥
अनादि से इसी में ही, भटकते जीव नाना हैं।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

11. बोधिदुर्लभ भावना

महासागर में ज्यों हीरा, बड़े सौभाग्य से मिलता।
हमें वैसे मनुज जीवन, धरम साधन यहाँ मिलता॥
इसी से रत्न दुर्लभ पा, हमें आतम सजाना है।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

12. धर्म भावना

कुदेवों को सदा त्यागो, तजो भव पाप हिंसा को।
कहा सर्वज्ञ देवों ने, धरम सच्ची अहिंसा को॥
अरे! 'सुव्रत' धरम-रथ से, हमें शिव साध्य पाना है।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

===

सामायिक पाठ (द्वात्रिंशतिका)

(सखी)

मैं मैत्री कर लूँ सबसे, गुणियों को लख हर्षाऊँ।
माध्यस्थ रहूँ दुर्जन पर, दुखियों पर करुणा लाऊँ ॥1 ॥
मैं भिन्न करूँ तन चेतन, तलवार म्यान के जैसे।
निर्दोष नन्तगुण आतम, झट पाऊँ प्रभु कृपा से ॥2 ॥
सुख दुख शत्रु मित्रों में, वन भवन मिलन विछुड़न में।
पर ममत्व बुद्धि तज के, प्रभु! समता हो मम मन में ॥3 ॥
प्रभु! चरण दीप तमहर सम, मम हृदय वसें कुछ ऐसे।
थिर लीन सदा कीलित हों, उत्कीर्ण बिम्ब के जैसे ॥4 ॥
प्रभु! यहाँ-वहाँ चलने में, जो जीव हुये क्षत मुझसे।
या छिन्न-भिन्न पीड़ित हों, वह पाप मिटे प्रभु पद से ॥5 ॥
जिनपथ प्रतिकूल प्रवर्तन, जो हुआ कर्मवश मुझसे।
या चर्या लोप हुई हो, वह पाप मिटे प्रभु पद से ॥6 ॥
ज्यों वैद्य मंत्र विष हर्त्ता, त्यों जो आलोचन करता।
या निन्दा गर्हा कर वो, भव दुख से पार उतरता ॥7 ॥
यदि प्रमाद से चर्या में, अतिक्रम व्यतिक्रम अतिचारा।
अनाचार हुआ तो शुद्धि, मैं कर लूँ प्रतिक्रम द्वारा ॥8 ॥
मन-शुद्धि का क्षय अतिक्रम, व्यतिक्रम है शील बिगारा।
है विषय रमण अतिचारा, अति आसक्ति अनाचारा ॥9 ॥
यदि अर्थ वाक्य पद मात्रा, कुछ कहा प्रमाद से कम हो।
वह क्षमा सरस्वती देवी, कर केवलज्ञान दो मुझको ॥10 ॥
हे चिंतामणि सम देवी! मुझको दो बोधि समाधि।

परिणाम विशुद्धि शिवसुख, हो आत्मोपलब्धि की सिद्धि ॥11॥
जिनको सुर नर मुनि ध्यायें, जिनके गुण ग्रंथ सुनायें।
अर्हंत देव श्री जिनवर, वह मेरे हिय वस जायें ॥12॥
सुख दर्शन-ज्ञानमयी जो, जो बाह्य विकार नशायें।
जो समाधिगम्य परमात्मा, वो मेरे हिय वस जायें ॥13॥
जो भव दुख जाल नशायें, भव अंतराल लख पायें।
अंतस्थ योगि अवलोकी, वो मेरे हिय वस जायें ॥14॥
जो जन्म मृत्यु दुख हर्त्ता, जो मोक्षमार्ग दिखलायें।
अकलंक विकल जगदृष्टा, वो मेरे हिय वस जायें ॥15॥
जो राग आदि जग जन में, वो जिनमें कभी न पायें।
अनपाय अतिन्द्रिय ज्ञानी, वो मेरे हिय वस जायें ॥16॥
जो व्याप्य सिद्ध ज्ञायक हैं, चिंतन दुर्भाव नशायें।
निष्कर्म विश्वकल्याणी, वो मेरे हिय वस जायें ॥17॥
निकलंक सूर्य सम निर्मल, जो आप्त कर्ममल हर्त्ता।
जो एक अनेकी नित्यं, वह शरण प्राप्त मैं करता ॥18॥
यह जगत प्रकाशी सूरज, जो आप्त अग्र ना टिकता।
यों निजथित ज्ञान प्रकाशी, वह शरण प्राप्त मैं करता ॥19॥
शिव शांत शुद्ध जिन-दर्शन, कर जगत-पृथक ही दिखता।
जो आप्त अनादि अनंता, वह शरण प्राप्त मैं करता ॥20॥
रतिमान शोक भय मूर्च्छा, या विषाद निद्रा चिंता।
जो आप्त अग्नि सम हरते, वह शरण प्राप्त मैं करता ॥21॥
पाषाण काष्ठ तृण भूमि, ये नहीं समाधि के आसन।
बिन विषय कषाय चिदातम, वह ज्ञानी कहते साधन ॥22॥

क्योंकि लोकपूजा या आसन, या संघों के सम्मेलन।
ये नहीं समाधि के साधन, सो बाह्य त्याग भज चेतन ॥23॥

ये बाह्य जगत ना मेरा, ना मैं हूँ बाह्य जगत का।
यह निश्चय कर भद्रातम, तज बाह्य ध्यान कर निज का ॥24॥

तुम निज को निज में देखो, हो शुद्ध ज्ञान दर्शन से।
यों जहाँ कहीं बन ध्यानी, तो हो समाधि निश्चय से ॥25॥

मम आतम ज्ञान स्वभावी, एकाकी निर्मल शाश्वत।
यह कर्म जनित जग सारा, ना अपना है ना शाश्वत ॥26॥

तन भी जब जिसका ना हो, तो क्या पुत्र मित्र तिय साथी।
ज्यों चर्म दूर होने पर, क्या रोग कूप हों साथी ॥27॥

इस संसारी प्राणी को, संयोग दुखों के द्वारे।
सो इच्छुक निज मुक्ति के, संयोग त्याग दें सारे ॥28॥

संसार रूप दुख वन में, हर विकल्प पतन का हेतु।
सो इन्हें त्यागकर केवल, निज को लख निज में रम तू ॥29॥

जो पहले कर्म किये हैं, शुभ अशुभ वही फल पायें।
सुख दुख दें अगर पराये, तो निजकृत निष्फल जायें ॥30॥

अपने कर्मों बिन कोई, देता न किसी को किंचन।
यों चिंतन कर हे! आत्मन्, पर बुद्धि त्याग परमातम ॥31॥

हैं वंद्य 'अमितगति' द्वारा, निर्दोष मुक्त परमातम।
जो इनको मन से ध्याते, वे पाते मोक्ष महल धन ॥32॥

(दोहा)

इन बत्तीस पदों सहित, 'सुव्रत' हो एकाग्र।
परमातम दर्शन करे, वह पाये लोकाग्र॥

===

स्वरूप संबोधन

(दोहा)

ज्ञानमूर्ति अक्षय बने, मुक्तामुक्त जिनेश।
कर्म रहित परमात्म को, करूँ नमोऽस्तु विशेष ॥1 ॥

(ज्ञानोदय)

है उपयोग जीव का लक्षण, क्रमशः कारण फल वाला।
ग्राह्य और अग्राह्य आतमा, अनादि अनंत विधि वाला॥
व्यय उत्पाद ध्रौव्य गुण वाला, सबसे सुंदर आतम हो।
ऊर्ध्व गमन लोकाग्र निवासी, हो नमोऽस्तु परमातम को ॥2 ॥
किसी अपेक्षा से यह आतम, भिन्न ज्ञान से होता है।
तथा कथंचित अभिन्न भी हो, नहीं सर्वथा होता है॥
भिन्न अभिन्न ज्ञान आतम से, हो गुण गुणी विवक्षा से।
ऐसा कहें केवली भगवन्, कर लो परख परीक्षा से ॥3 ॥
प्रमेयत्व आदिक धर्मों से, आतम कहा अचेतन सा।
तथा ज्ञान दर्शन धर्मों से, आतम समझो चेतन सा॥
अतः कभी चेतन हो आतम, कभी अचेतन कहलाये।
अनेकान्त स्याद्वाद कथन से, विसंवाद हल हो जाये ॥4 ॥
अपनी देह बराबर आतम, ज्ञान मात्र भी मान्य रहा।
यही ज्ञान सर्वज्ञ रूप ले, स्व-पर द्रव्य पहचान रहा॥
इससे आत्मा विश्वव्यापी है, नहीं सर्वथा माना है।
फैलन सिकुड़न प्रकाश जैसा, आतम शुद्ध बनाना है ॥5 ॥
एक रूप होकर भी चेतन, एक अनेक स्वभाव धरे।
नाना रूप ज्ञान होकर भी, एक अनेक न रूप धरे॥
एकानेक कथंचित चेतन, नहीं सर्वथा एकानेक।

मुख्य गौणमत जिनशासन का, नमोऽस्तु कर पालो सिर टेक ॥6 ॥
निजी चतुष्टय से यह आतम, कथन योग्य प्रभु बोल रहे।
किन्तु पर की अपेक्षा से यह, अवक्तव्य सो मौन रहे॥
अतः आत्म एकान्त रूप से, वाच्य और निर्वाच्य नहीं।
कथन विवक्षा जिनआगम की, नमन योग्य सर्वोच्च रही ॥7 ॥
स्व-धर्म से विधिमय आतम हो, निषेधमय परधर्मों से।
ज्ञानमूर्ति होने से आतम, मूर्तिक हो निज कर्मों से॥
कर्म रहित हो आत्म अमूर्तिक, यह सिद्धान्त जिनागम का।
विधि निषेध का कथन समझने, आतम रसिया आ धमका ॥8 ॥
इत्यादिक अनेक धर्मों को, स्वीकृत करता आतम है।
इनके फल तो बंध मोक्ष हैं, उपादान खुद आतम है॥
बंध बंध के कारण से हो, मोक्ष मोक्ष के साधन से।
जो अपनाओ वह फल पाओ, वीतराग जिनशासन से ॥9 ॥
जो जैसे कर्मों को करता, वह आतम उनका कर्त्ता।
जो जैसा जिसका फल होता, वह आतम उनका भोक्ता॥
वह आतम अंतर बाहर से, मुक्त उन्हीं से होता है।
ऐसे महातपस्वी जन को, नमोऽस्तु को मन होता है ॥10 ॥
सिद्धों सम अपनी आतम को, पाने का जो पंथ रहा।
सम्यग्दर्शन ज्ञान आचरण, रत्नत्रय निर्ग्रंथ कहा।
सब तत्त्वों में मुख्य आत्म है, उसकी शुद्ध अवस्था में।
थिर होना निज दर्शन माना, रम लो ब्रह्म व्यवस्था में ॥11 ॥
जो जैसा है उसका वैसा, निर्णय सम्यग्ज्ञान कहा।
दीपक जैसा स्वपर प्रकाशी, निज व्यवसायी ज्ञान रहा॥

भिन्न कथंचित बाह्य वस्तु से, किन्तु आत्म से रहा अभिन्न।
सम्यग्ज्ञानी ब्रह्म रमण को, नमोऽस्तु करके रहो प्रसन्न ॥12 ॥
दर्शन ज्ञान अवस्थाओं के, भावों में आगे-आगे।
क्रमशः दृढ़ अवलम्बन लेकर, जो रहते जागे-जागे॥
सुख-दुख में माध्यस्थ भाव तो, व्यवहारी चारित्र कहा।
धर्म तीर्थ का यही प्रवर्तक, प्रभावना का मित्र रहा ॥13 ॥
निश्चय नय से सुख में दुख में, मैं तो मात्र अकेला हूँ।
एक अकेला ज्ञाता दृष्टा, ना गुरु हूँ ना चेला हूँ॥
इन भावों की स्वानुभूति ही, निज निश्चय चारित्र कहा।
इस निश्चय व्यवहार धर्म की, मूरत मुनि का चित्र रहा ॥14 ॥
निश्चय व्यवहारी रत्नत्रय, मूल मुक्ति के कारण हैं।
लेकिन देश काल तप संहनन, इत्यादिक सहकारण हैं॥
अंतरंग बहिरंग हेतु ज्यों, मिले मुक्ति साकार हुई।
लोक पूज्य उस मुनि मुद्रा की, जग में जय जयकार हुई ॥15 ॥
इस प्रकार सब सोच समझकर, निज बल से तप त्याग करें।
सुख-दुख में समता धरकर के, निज से निज अनुराग करें॥
राग-द्वेष बिन शुद्धातम का, हर हालों में ध्यान करें।
आत्म भावना पूरी करके, आतम का कल्याण करें ॥16 ॥
सभी कषायों से अनुरंजित, चित्त तत्त्व ना ग्रहण करे।
तो फिर कैसे शुद्धातम में, रमण करे भव भ्रमण हरे॥
जैसे नीले लाल वस्त्र पर, कुमकुम रंग न चढ़ सकता।
तो कषाय से रंजित आतम, कैसे निज में रम सकता ॥17 ॥
इन रागादिक सब दोषों की, मुक्ति हेतु यदि आ धमके।

अतः आप अब सभी ओर से, हो जाओ निर्मोह सखे॥
उदासीनता से तत्त्वों के, चिंतन में तत्पर हो लो।
उस मुद्रा को करके नमोऽस्तु, परमातम की जय बोलो॥18॥
हेय तत्त्व क्या उपादेय क्या, पहले इसे समझ लेना।
तजो हेय का अवलंबन फिर, उपादेय अपना लेना॥
उपादेय निज आत्म तत्त्व का, आश्रय उत्तम वस्तु है।
आओ! आओ! रमो इसी में, इसको सदा नमोऽस्तु है॥19॥
जब तक इस आतम में सुन लो, धूम रहेगी तृष्णा की।
तब तक मोक्ष न मिल पायेगा, राह मिलेगी भ्रमणा की॥
अतः तजो पर की अति तृष्णा, करो न तृष्णा आतम में।
हटे लालसा मोक्ष महल सा, झलकेगा निज आतम में॥20॥
पर की छोड़ो जिस व्यक्ति की, नहीं मोक्ष में भी इच्छा।
वही मोक्ष को पा जाता जो, धरे दिगम्बर जिन दीक्षा॥
अतः आत्महित के अन्वेषी, करो न कोई भी इच्छा।
वीतरागता पाने चलिए, यह अकलंक देव शिक्षा॥21॥
इसविध अपनी है क्या वस्तु, तथा परायी क्या वस्तु।
करो इसी का सम्यक् चिंतन, तो सिद्धों सा चख रस तू॥
यही उपेक्षा भाव तुम्हारे, यदि उत्कर्ष दशा पायें।
तो निश्चित ही मोक्ष मिलेगा, नमोऽस्तु करना सब चाहें॥22॥
निज आतम की निष्ठा से यदि, सम्यक् चिंतन करते हो।
तो फिर मोक्ष सुलभ ही हो यदि, सम्यक् उद्यम करते हो॥
स्वाश्रित जिसका फल उसका क्या, करोगे न उद्यम भाई।
मेरी मानो कर लो भैया, मुक्तिवधू यदि मन भायी॥23॥

अपना पर का तत्त्व समझ लो, किन्तु न उसमें मोह करो।
तू-तू मैं-मैं सारी छोड़ो, मोक्ष प्राप्ति को मोह हरो॥
स्वानुभूति को बनो निराकुल, ठहर! ठहर! बस आतम में।
निज से जिन बन जाते सचमुच, स्वरूप का रस चाखन में।।24॥
निज ने निज को निज साधन से, निज के लिये बुलाना है।
निज से निज के निज में रहकर, अविनश्वर निज ध्याना है॥
निज ध्याकर के निज से प्रकटा, परमामृत आनंद पियो।
सब कुछ निज में कुछ ना पर में, लेकर यह अध्यात्म जियो।।25॥

(चौपाई)

इस विध निजधन शिक्षा सीखी, स्वरूप संबोधन पच्चीसी।
आदर से निज सीख सुने जो, 'सुव्रत' धर अकलंक बने वो॥

===

रत्नाकर पच्चीसी

(ज्ञानोदय)

श्रेयस्कारी संपत्ती वा, शुभ क्रीड़ा के सदन रहे।
नरनाथों से सुरनाथों से, वंदित तव पद कमल रहे॥
तुम सर्वोच्च सभी अतिशय से, हे जिनेन्द्र सर्वज्ञ प्रभो।
ज्ञान कला के तुम निधान हो, रहो सदा जयवन्त विभो॥1॥
हो आधार जगतत्रय के तुम, और कृपा अवतार रहे।
भव दुर्वार विकारों के प्रभु, आप वैद्य हितकार रहे॥
वीतराग श्री विज्ञ प्रभो जी, तुम पद में मैं रहता हूँ।
निज निश्छल भावों से मैं कुछ, आज निवेदन करता हूँ।।2॥
बाल भाव लीलामय बालक, मात-पिता के आगे आ।
निर्विकल्प होकर नित जैसे, कहता ना सब कुछ ही क्या॥

यों हे नाथ! आपके आगे, अपना आशय कहता हूँ।
पश्चाताप युक्त होकर मैं, ज्यों का त्यों सब कहता हूँ ॥3॥
दान दिया ना मैंने हे प्रभु!, किया शील का ना पालन।
और कभी मैंने अब तक ही, नहीं तपा तप पाकर तन॥
नहीं हुआ अब तक मेरा यह, शुभ भावोंमय अन्तर्मन।
सो इस भव में अहो! व्यर्थ ही, मैं नित करता रहा भ्रमण ॥4॥
क्रोध अग्नि से नित्य जला मैं, लोभ सर्प से डँसा गया।
मैं अभिमान रूप अजगर से, सदा ग्रस्त ही किया गया॥
माया रूपी जंजालों से, मैं तो बाँधा नित्य गया।
अब मैं कैसे करूँ आपका, भजन गान सत् पुण्य-कथा ॥5॥
हे लोकेश! किया ना मैंने, उभय लोक में हित अपना।
तभी हुआ ना इसी लोक में, मेरे सुख का सच सपना॥
हे जिन! हम जैसे लोगों का, यहाँ जन्म तो व्यर्थ रहा।
मात्र भवों की पूर्ति हेतु ही, सदा-सदा वह यहाँ कहा ॥6॥
चरित मनोहर धारी भगवन्!, तव मुख चन्द्र सुधा झरता।
उन किरणों को पा मेरा मन, कुछ ना लाभ लिया करता॥
ना आनन्द महारस पीता, तभी मानता मैं ऐसा।
नित मुझ जैसे लोगों का मन, रहे कठिन पत्थर जैसा ॥7॥
बहुत भ्रमण भव-भव का कर मैं, हे स्वामिन्! तव दर आया।
और आपसे अति-अति दुर्लभ, यह रत्नत्रय भी पाया॥
सदा प्रमाद-नींद से मैंने, व्यर्थ गँवाया है उसको।
अब किसके आगे मैं रोऊँ, और पुकारूँ मैं किसको ॥8॥
हे ईश्वर! पर को ठगने को, मैंने बस वैराग्य लिया।

जगत मनोरंजन के कारण, धर्मों का उपदेश दिया॥
हुआ अध्ययन विद्या का जो, उससे झगड़ा नित्य करूँ।
इस विध अपने हास्य कर्म की, कितनी-कितनी कथा कहूँ॥9॥
मेरा मुख तो दोष सहित है, परनिन्दा को नित करके।
नयन विलोकन परनारी कर, दोष सहित नित ही रहते॥
बुरा सोचकर पर का यह चित, दूषित-दूषित हो जाता।
कैसे मैं कृतकृत्य होउं अब, विभो! भाव बस यह आता॥10॥
विषयों से अंधा हो मैंने, कामदेव से पीड़ित हो।
उसी दशा के वश होकर ही, विडम्बना कर दी है जो॥
वह लज्जित हो कही आपसे, और प्रकाशित है कर दी।
आप स्वयं सर्वज्ञ रहे हो, जानो सब कुछ बात सही॥11॥
मैंने परमेष्ठी मंत्रों को, अन्य मंत्र से ध्वस्त किया।
वाक्य कुशास्त्रों के द्वारा ही, कथन जिनागम नष्ट किया॥
संग कुदेवों का पाकर के, व्यर्थ कार्य की वांछा की।
यह सब कुछ हे नाथ! हमारी, मति विभ्रम आकांक्षा थी॥12॥
दृष्टिगोचर हुये आपको, मूढ़ बुद्धि मैंने त्यागा।
मृगनयनी नारी-नयनों को, लखने को मम हिय भागा॥
वक्ष ओज गहरी नाभी को, देख-देख मन ललचाया।
देख कमर पतली उनकी वा, हाव-भाव उनके ध्याया॥13॥
चपल नयन वाली नारी का, मुख देखा प्यारा-प्यारा।
हुआ हृदय में मुझे उसी से, राग भाव जो बहु सारा॥
वह सिद्धान्त शुद्ध जल रूपी, सागर में ना धुला गया।
कहो तरण-तारण भगवन् जी, इसमें कारण रहता क्या॥14॥

ना सुन्दर मेरी काया है, गुण समूह ना मुझमें है।
और नहीं निर्दोष कला भी, न विज्ञान ही मुझमें है॥
प्रभायुक्त ना कोई प्रभुता, यद्यपि मुझमें रही नहीं।
तो भी देखो अहंकार से, मैं पीड़ित हो रहा कुधी॥15॥
आयु शीघ्र ही गलती जाये, पाप बुद्धि पर गली नहीं।
उम्र शीघ्र ही बीत रही पर, विषय वासना गयी नहीं॥
किया यत्न औषधि सेवन का, धर्म यत्न पर किया नहीं।
हे स्वामी जी! मोह भरी मम, विडम्बना है बड़ी यही॥16॥
केवलज्ञान सूर्य तव पाकर, हुआ प्रकाशित जग सारा।
किन्तु देव मैंने ना माना, पुण्य-पाप भव शिव प्यारा॥
यों धूर्तों की खोटी वाणी, निज कानों में धार लही।
सो हम जैसे लोगों को है, बार-बार धिक्कार यही॥17॥
नहीं देव पूजा मैंने की, ना पात्रों को स्वीकारा।
नहीं धर्म श्रावक का पाला, श्रमण धर्म भी ना धारा॥
यह मानव पर्याय प्राप्त कर, मैंने जो भी कार्य किये।
वे ही वन-विलाप के जैसे, सारे नित ही व्यर्थ किये॥18॥
कामधेनु वा कल्पवृक्ष भी, चिन्तामणि जब ना पाये।
तब उनको पाने की इच्छा, बार-बार हम दुहराये॥
और प्रकट ही सुखपद पाकर, जैन धर्म ना स्वीकारे।
हे जिनवर! देखो यह मेरे, भाव-मूढ़ता के सारे॥19॥
मैं नित अधम चित्त मैं सोचूँ, भोग भरी लीला सारी।
पर ये रोगों की लीला है, यही बात ना स्वीकारी॥
सदा उपार्जन धन का करता, किन्तु निधन को ना सोचूँ।

मैं नारी संसर्ग विचारूँ, नरक जेल को ना सोचूँ ॥20॥
किया आचरण उत्तम ना सो, साधु हृदय ना वास किया।
परोपकार न करके मैंने, यश अर्जित भी नहीं किया॥
और नहीं इस जग में मैंने, तीर्थों का उद्धार किया।
इस विध मैंने जन्म पायकर, उसे व्यर्थ ही हार दिया ॥21॥
गुरुओं के वचनों को सुनकर, चढ़ा रंग वैराग्य नहीं।
और वचन दुर्जन के सुनकर, शान्ति अंश भी पाय नहीं॥
मेरे अन्दर लेश न आया, शुभ अध्यात्म देव मेरे।
फिर किस विध मैं पार करूँगा, इस भवसागर के फेरे ॥22॥
पूर्व भवों में मैंने कुछ भी, किया पुण्य ना थोड़ा सा।
और जन्म आगामी में भी, कर न सकूँगा थोड़ा सा॥
अगर ईश! ऐसा हूँ मैं तो, इससे जीवन भ्रष्ट हुये।
भूत भविष्यत वर्तमान ये, त्रय भव मेरे नष्ट हुये ॥23॥
हे देवों से पूजित भगवन्!, कहूँ आपके आगे क्या?
मैं अपनी चारित्र कहानी, व्यर्थ बहुत विध बोलूँ क्या?
क्योंकि आप तो तीन लोक का, रूप स्वरूप सभी जानो।
किया कथन मेरे द्वारा जो, स्वामी उसको पहचानो ॥24॥

(शंभु)

हे जिनवर जी! यहाँ आप सा, दीनोद्धार धुरन्धर ना है।
और यहाँ पर कृपा पात्र भी, मेरे जैसा दूजा ना है॥
फिर भी वैभव मैं ना चाहूँ, हे अर्हन्! बस इतना मागूँ।
श्री रत्नाकर शुभ श्रेयस्कर, शिव सद् बोधिरत्न मैं चाहूँ ॥25॥

===

समाधि भावना

भगवन् सदैव मुझ पै, हो छत्र छाया तेरी।
चरणों में आपके ही, होवे समाधि मेरी॥
1. दर्शन तुम्हारा करके, सिर भी तुम्हें झुकाऊँ।
शास्त्रों का पान करके, तुम सा ही रूप पाऊँ॥
सत्संग करने मुझसे, होवे कभी न देरी। चरणों...
2. पर के न दोष बोलूँ, बोलूँ मधुर वचन मैं।
आगम का ले सहारा, अपना करूँ मनन मैं॥
जब तक न मोक्ष पाऊँ, रख लेना लाज मेरी। चरणों...
3. जब भी मरण हो मेरा, संन्यास से मरण हो।
मुनियों के साथ गुरु के, चरणों की बस शरण हो॥
जिनवाणी माँ की गोदी, छवि सामने हो तेरी। चरणों...
4. बचपन से आपके जो, चरणों की की हो सेवा।
यदि चाहते उसी का, बस फल यही हो देवा॥
णमोकार जपते-जपते, सल्लेखना हो मेरी। चरणों...
5. जब तक मुझे मिले ना, निर्वाण की नगरिया।
तब तक चरण तुम्हारे, मेरे मन में हो सँवरिया॥
मेरा हृदय न छोड़े, चरणों की छाँव तेरी। चरणों...
6. बस एक भक्ति तेरी, दुख संकटों को हरती।
बोधि समाधि दे के, सुख संपदा भी भरती॥
ओंकारमय बना दो, हर श्वाँस नाथ मेरी। चरणों...
7. जयवंत हो जिनशासन, हो जय-जिनेन्द्र नारा।
निर्ग्रंथ पंथ धारूँ, तजूँ पाप पंथ सारा॥
'सुव्रत' की प्रार्थना ये, बरसे कृपा घनेरी। चरणों...

===

आत्म भावना

(तर्ज–दिन रात मेरे स्वामी...)

दिन–रात सिद्ध स्वामी, हम भावना ये भायें।
शुद्धात्म आप जैसा, हम अपना शीघ्र पायें॥

1. जो भाव हैं विकारी, वो राग द्वेष सारे।
सुख शांति अपनी छीनें, दुर्भाव ज्यों हुआ रे।
वो राग–द्वेष तुम सम, हम अपने जीत पायें॥ शुद्धात्म...
2. बचपन में खेल खेले, फिर तो जवानी भोगी।
खोया बुढ़ापा तो फिर, निज प्राप्ति कैसे होगी।
इस देह में रहें पर, ज्योति विदेही पायें॥ शुद्धात्म...
3. हम सोचते सदा हैं, तुमसे ना दूर जायें।
भव कर्म रोक लेते, कैसे तुम्हें मनायें।
हम काश! आप जैसे, कर्मों को जीत पायें॥ शुद्धात्म...
4. शृंगार हो हमारा, अलंकार हो तुम्हारा।
उज्ज्वल स्वरूप पाने, अध्यात्म हो तुम्हारा।
आतम के रत्न तुम सम, बोलो कहाँ से पायें॥ शुद्धात्म...
5. तुम शक्ति पिण्ड घन हो, चैतन्य में मगन हो।
दर्शन तुम्हारा करने, 'सुव्रत' का भाव मन हो।
तुम एक अंक बनना, हम शून्य रूप पायें॥ शुद्धात्म...

===

महावीराष्टक स्तोत्र (हिन्दी पद्यानुवाद)

(ज्ञानोदय)

जिनके ज्ञान रूप दर्पण में, ध्रौव्य नाश उत्पादमयी।
युगपद् प्रतिबिम्बित शोभित हों, जड़ चेतन के अर्थ सभी॥
जग साक्षी जो सूरज जैसे, शिवमग प्रतिपादक ज्ञानी।
मेरे नयनों के वासी हो, महावीर वे जिन स्वामी॥1॥
बिन लाली अनिमेष नयन हैं, कमल युगल सम जो रहते।
भीरत बाहर क्रोध नहीं है, प्रकट रूप से यह कहते॥
जिनकी मूरत परम शान्त है, अति निर्मल जग कल्याणी।
मेरे नयनों के वासी हो, महावीर वे जिन स्वामी॥2॥
जिनके दोनों पद कमलों में, देवों की श्रेणी झुकतीं।
उनके मुकुटों की मणियों की, कांति जिन्हें शोभित करतीं॥
जग जन के भव ताप शांति को, जिनका बस सुमरण पानी।
मेरे नयनों के वासी हो, महावीर वे जिन स्वामी॥3॥
जिनकी पूजा के भावों से, मेढ़क प्रमुदित मन वाला।
इस जग में क्षणभर में देखो, बना देव सुख गुण वाला॥
तो तव भक्त मोक्ष सुख पाते, क्या इसमें अचरज स्वामी।
मेरे नयनों के वासी हो, महावीर वे जिन स्वामी॥4॥
चमकित स्वर्ण कांति सम तन बिन, एकानेक आत्म ज्ञानी।
सिद्धारथ राजा के सुत जो, जन्म रहित हैं श्रीमानी॥
वीतराग भव राग बिना जो, अद्भुत गति है शिवधामी।
मेरे नयनों के वासी हो, महावीर वे जिन स्वामी॥5॥
जिनकी शुचि वाणी की गंगा, विपुल ज्ञान के जल द्वारा।

जग जीवों को नहलाती है, बहु नय की लहरों द्वारा॥
ज्ञानी हंसों से परिचित यों, जाने जिनकी जिनवाणी।
मेरे नयनों के वासी हो, महावीर वे जिन स्वामी॥6॥
जिनने कुमार काल दशा में, चमकित शान्त सदा सुख के।
पूज्य राज्य शिवपद पाने को, अपने आतम के बल से॥
दुर्जय पापी त्रिभुवन जेता, काम-सुभट जीता मानी।
मेरे नयनों के वासी हो, महावीर वे जिन स्वामी॥7॥
महामोह के रोग शमन को, आकस्मिक जो वैद्य रहे।
बिना उपेक्षा के बन्धू जो, मंगल महिमा सहित रहे॥
भव दुख से भयभीत जनों को, उत्तम गुण शरणादानी।
मेरे नयनों के वासी हो, महावीर वे जिन स्वामी॥8॥

(दोहा)

भागचंद अष्टक रचे, महावीर का स्तोत्र।
पढ़े सुने जो भक्ति से, पाय परम गति मोक्ष॥9॥
'सुव्रत' रचकर पद्य में, महावीर गुण गाय।
महावीर जल्दी बनूँ, सर्वोदय मन लाय॥10॥

===

गोम्टेश अष्टक–1

(चौपाई)

नीलकमल दल जैसे नयना, चंदा जैसा मुखड़ा है ना।
नासा लख चंपा हुई पानी, उन गोम्मटेश को सदा नमामि ॥1 ॥
नभ जल जैसे गाल चमकते, कंधों तक तो कान लटकते।
भुजा दंड गज सूँड समानी, उन गोम्मटेश को सदा नमामि ॥2 ॥
कंठ शंख जैसा अनुपम है, वक्ष विशाल हिमालय सम है।
कटि प्रदेश अचल अभिरामी, उन गोम्मटेश को सदा नमामि ॥3 ॥
विंध्यगिरी पर चमक रहे जो, सब चैत्यों के प्रमुख रहे जो।
जग को सुख दें चंदा स्वामी, उन गोम्मटेश को सदा नमामि ॥4 ॥
जिनके तन पर चढ़ी लतायें, जिन्हें कल्पतरु भव्य बतायें।
जिन पद में सुर भी प्रणमामि, उन गोम्मटेश को सदा नमामि ॥5 ॥
जिन्हें न भय जो शुद्ध दिगम्बर, जिनके मन को रुचे न अम्बर।
सर्प आदि से कपित न स्वामी, उन गोम्मटेश को सदा नमामि ॥6 ॥
आश रहित समदर्शनधारी, सुख नहिं चाहें दोष निवारी।
भरत भ्रात में शल्य विरामी, उन गोम्मटेश को सदा नमामि ॥7 ॥
तजे उपाधी समता पाये, वित्त धाम मद मोह नशाये।
किये वर्ष भर अनशन स्वामी, उन गोम्मटेश को सदा नमामि ॥8 ॥

(दोहा)

प्राकृत में अष्टक रचे, 'नेमिचन्द्र' गुण गाए।
बाहुबली के पद्य में, 'सुव्रत' गीत सुनाए॥

===

गोम्मटेश अष्टक–2

(दोहा)

नील कमल दल से नयन, मुख शशि समा विशेष।
चम्पा जय नासा करे, नित नत उन गोम्टेश ॥1॥
कर्ण लटकते काँध तक, गज सूँडा कर भेष।
गाल नीर सम गगन से, नित नत उन गोम्टेश ॥2॥
कंठ जीतता शंख को, बहु शुभ मध्यप्रदेश।
सीना हिमगिर सा अचल, नित नत उन गोम्टेश ॥3॥
विंध्याचल पर चमकते, चैत्य श्रेष्ठ परमेश।
पूर्ण चन्द्र जग–हर्ष को, नित नत उन गोम्टेश ॥4॥
बेल महातन पर चढ़ीं, पूजित चरण सुरेश।
कल्पवृक्ष भविवर्ग को, नित नत उन गोम्टेश ॥5॥
अभय दिगम्बर शुद्ध जो, वस्त्र राग ना लेश।
सर्पादिक से कंप ना, नित नत उन गोम्टेश ॥6॥
विमल दृष्टि आशा बिना, सुख वांछा ना शेष।
भरत शल्य बिन राग बिन, नित नत उन गोम्टेश ॥7॥
धर–पद–धन–मद–मोह बिन, समता सहित महेश।
एक साल उपवास मय, नित नत उन गोम्टेश ॥8॥
प्राकृत में अष्टक रचे, नेमिचन्द्र गुण गाय।
गौतम देश के पद्य में, 'सुव्रत' गीत सुनाय ॥9॥

===

जिनवाणी स्तुति

(शुद्ध गीता) (लय–दयाकर दान भक्ति का...)

दयाकर ज्ञान तत्त्वों का, हमें दो भारती माता।
तिमिर अज्ञान पापों का, हरो जिन सरस्वती माता॥
कही अर्हन्त देवों ने, वही है पूज्य जिनवाणी।
रही है अंग बारहमय, रचे गणधर महाज्ञानी॥
हरें मन के अँधेरे हम, हमें श्रुत–दीप दो माता।
तिमिर अज्ञान...॥1॥
यही पैनी रही छैनी, जुदा जिय कर्म करती है।
हरे भव ताप दुख जड़ता, यही सुख शांति करती है॥
हमारी दूर भटकन हो, दिला दो राह जिनमाता।
तिमिर अज्ञान...॥2॥
रहें हम बाल अज्ञानी, नहीं कोई हमारा है।
शरण आये तुम्हारी माँ, यही साँचा सहारा है॥
भुलाकर भूल 'सुव्रत' की भला कर तार दो माता।
तिमिर अज्ञान...॥3॥

(दोहा)

तत्त्व पदारथ द्रव्य का, जिनवाणी दे ज्ञान।
जग कल्याणी मात को, बारम्बार प्रणाम॥4॥
माँ जिनवाणी जो भजे, पाले उसकी बात।
पहले सुख दोनों मिलें, बाद मोक्ष मिल जात॥5॥
परमेष्ठी का मंत्र जो, महामंत्र नवकार।
हम सब मिलकर अब यहाँ, मंत्र जपो नौ बार॥6॥

===

सामायिक पाठ

(ज्ञानोदय)

प्रेम भाव हो सब जीवों से, गुणीजनों में हर्ष प्रभो।
करुणा स्रोत बहे दुखियों पर, दुर्जन में मध्यस्थ विभो॥ 1॥
यह अनन्त बल शील आत्मा, हो शरीर से भिन्न प्रभो।
ज्यों होती तलवार म्यान से, वह अनन्त बल दो मुझको॥ 2॥
सुख दुख बैरी बन्धु वर्ग में, काँच कनक में समता हो।
वन उपवन प्रासाद कुटी में, नहीं खेद नहिं ममता हो॥ 3॥
जिस सुन्दरतम पथ पर चलकर, जीते मोह मान-मन्मथ।
वह सुन्दर पथ ही प्रभु मेरा, बना रहे अनुशीलन पथ॥ 4॥
एकेन्द्रिय आदिक प्राणी की यदि मैंने हिंसा की हो।
शुद्ध हृदय से कहता हूँ वह, निष्फल हो दुष्कृत्य विभो॥ 5॥
मोक्ष मार्ग प्रतिकूल प्रवर्तन जो कुछ किया कषायों से।
विपथ गमन सब कालुष मेरे, मिट जावें सद्भावों से॥ 6॥
चतुर वैद्य विष विक्षत करता, त्यों प्रभु मैं भी आदि उपान्त।
अपनी निन्दा आलोचन से करता हूँ पापों को शान्त॥ 7॥
सत्य अहिंसादिक व्रत में भी मैंने हृदय मलीन किया।
व्रत विपरीत प्रवर्तन करके शीलाचरण विलीन किया॥ 8॥
कभी वासना की सरिता का, गहन सलिल मुझ पर छाया।
पी पीकर विषयों की मदिरा मुझ में पागलपन आया॥ 9॥
मैंने छली और मायावी हो, असत्य आचरण किया।
परनिन्दा गाली चुगली जो मुँह पर आया वमन किया॥ 10॥
निरभिमान उज्ज्वल मानस हो, सदा सत्य का ध्यान रहे।
निर्मल जल की सरिता सदृश, हिय में निर्मल ज्ञान बहे॥ 11॥

मुनि चक्री शक्री के हिय में, जिस अनन्त का ध्यान रहे।
गाते वेद पुराण जिसे वह, परम देव मम हृदय रहे॥ 12॥
दर्शन ज्ञान स्वभावी जिसने, सब विकार ही वमन किये।
परम ध्यान गोचर परमातम, परम देव मम हृदय रहे॥ 13॥
जो भव दुख का विध्वंसक है, विश्व विलोकी जिसका ज्ञान।
योगी जन के ध्यान गम्य वह, बसे हृदय में देव महान्॥ 14॥
मुक्ति मार्ग का दिग्दर्शक है, जनम मरण से परम अतीत।
निष्कलंक त्रैलोक्य दर्शी वह देव रहे मम हृदय समीप॥ 15॥
निखिल विश्व के वशीकरण वे, राग रहे न द्वेष रहे।
शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञान स्वभावी, परम देव मम हृदय रहे॥ 16॥
देख रहा जो निखिल विश्व को, कर्म कलंक विहीन विचित्र।
स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार वह, देव करें मम हृदय पवित्र॥ 17॥
कर्म कलंक अछूत न जिसको, कभी छू सके दिव्य प्रकाश।
मोह तिमिर को भेद चला जो, परम शरण मुझको वह आप्त॥ 18॥
जिसकी दिव्य ज्योति के आगे, फीका पड़ता सूर्य प्रकाश।
स्वयं ज्ञानमय स्व पर प्रकाशी, परम शरण मुझको वह आप्त॥ 19॥
जिसके ज्ञान रूप दर्पण में, स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ।
आदि अन्तसे रहित शान्तशिव, परम शरण मुझको वह आप्त॥ 20॥
जैसे अग्नि जलाती तरु को, तैसे नष्ट हुए स्वयमेव।
भय विषाद चिन्ता नहीं जिनको, परम शरण मुझको वह देव॥ 21॥
तृण, चौकी, शिल, शैलशिखर नहीं, आत्म समाधि के आसन।
संस्तर, पूजा, संघ-सम्मिलन, नहीं समाधि के साधन॥ 22॥
इष्ट वियोग अनिष्ट योग में, विश्व मनाता है मातम।
हेय सभी हैं विषय वासना, उपादेय निर्मल आतम॥ 23॥

बाह्य जगत कुछ भी नहीं मेरा, और न बाह्य जगत का मैं।
यह निश्चय कर छोड़ बाह्य को, मुक्ति हेतु नित स्वस्थ रमें॥ 24॥
अपनी निधि तो अपने में है, बाह्य वस्तु में व्यर्थ प्रयास।
जग का सुख तो मृग तृष्णा है, झूठे हैं उसके पुरुषार्थ॥ 25॥
अक्षय है शाश्वत है आत्मा, निर्मल ज्ञान-स्वभावी है।
जो कुछ बाहर है, सब पर है, कर्माधीन विनाशी है॥ 26॥
तन से जिसका ऐक्य नहीं हो, सुत, तिय, मित्रों से कैसे।
चर्म दूर होने पर तन से, रोम समूह रहे कैसे॥ 27॥
महा कष्ट पाता जो करता, पर पदार्थ, जड़-देह संयोग।
मोक्ष महल का पथ है सीधा, जड़-चेतन का पूर्ण वियोग॥ 28॥
जो संसार पतन के कारण, उन विकल्प जालों को छोड़।
निर्विकल्प निर्द्वन्द आत्मा, फिर-फिर लीन उसी में हो॥ 29॥
स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते।
करे आप, फल देय अन्य तो स्वयं किये निष्फल होते॥ 30॥
अपने कर्म सिवाय जीव को, कोई न फल देता कुछ भी।
'पर देता है' यह विचार तज स्थिर हो, छोड़ प्रमादी बुद्धि॥ 31॥
निर्मल, सत्य, शिवं सुन्दर है, 'अमित गति' वह देव महान।
शाश्वत निज में अनुभव करते, पाते निर्मल पद निर्वाण॥ 32॥

इन बत्तीस पदों से जो कोई, परमातम को ध्याते हैं।
साँची सामायिक को पाकर, भवोदधि तर जाते हैं॥

===

भावना बत्तीसी

(छुल्लक ध्यानसागर जी)

(विष्णु)

मेरा आतम सब जीवों पर मैत्री भाव करे,
गुणगण मण्डित भव्य जनों पर प्रमुदित भाव धरे।
दीन दुखी जीवों पर स्वामी! करुणाभाव करे,
और विरोधी के ऊपर नित समता भाव धरे॥ 1॥
तुम प्रसाद से हो मुझमें वह शक्ति नाथ! जिससे,
अपने शुद्ध अतुल बलशाली चेतन को तन से।
पृथक् कर सकूँ पूर्णतया मैं ज्यों योद्धा रण में,
खींचे निज तलवार म्यान से रिपु सन्मुख क्षण में॥ 2॥
छोड़ा है सबमें अपनापन मैंने मन मेरा,
बना रहे नित सुख में दुःख में समता का डेरा।
शत्रु-मित्र में मिलन-विरह में, भवन और वन में,
चेतन को जाना न पड़े फिर नित नूतन तन में॥ 3॥
अन्धकार नाशक दीपक सम अडिग चरण तेरे,
अहो! विराजे रहें हमेशा उर में ही मेरे।
हों मुनीश! वे धुले हुए से या कीलित जैसे,
अथवा खुदे हुए से हों या प्रतिबिम्बित जैसे॥ 4॥
हो प्रमाद वश जहाँ-तहाँ यदि मैंने गमन किया,
एकेन्द्रिय-आदिक जीवों को घायल बना दिया।
पृथक् किया या भिड़ा दिया हो अथवा दबा दिया,
मिथ्या हो दुष्कृत वह मेरा प्रभुपद शीश किया॥ 5॥
चल विरुद्ध शिव-पथ के मैंने जो दुर्मति होके,

होके वश में दुष्ट इन्द्रियों और कषायों के।
खण्डित की जो चरित-शुद्धि वह दुष्कृत निष्फल हो,
मेरा मन भी दुर्भावों को तजकर निर्मल हो॥ 6॥
मन्त्र शक्ति से वैद्य उतारे ज्यों अहि-विष सारा,
त्यों अपनी निन्दा-गर्हा व आलोचन द्वारा।
मन वच तन से या कषाय से संचित अघ भारी,
भव दुख कारण नष्ट करूँ मैं होकर अविकारी॥ 7॥
धर्म क्रिया में मुझे लगा जो कोई अघकारी,
अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतीचार व अनाचार भारी।
कुमति, प्रमाद निमित्तक उसका प्रतिक्रमण करता,
प्रायश्चित बिना पापों को कौन, कहाँ हरता॥ 8॥
चित्त शुद्धि की विधि की क्षति को अतिक्रमण कहते।
शीलबाड़ के उल्लंघन को व्यतिक्रमण कहते,
त्यक्त विषय के सेवन को प्रभु! अतीचार कहते।
विषयासक्तपने को जग में अनाचार कहते॥ 9॥
शास्त्र पठन में मेरे द्वारा यदि जो कहीं-कहीं,
प्रमाद से कुछ अर्थ, वाक्य, पद, मात्रा छूट गयी।
सरस्वती मेरी उस त्रुटि को कृपया क्षमा करें,
और मुझे कैवल्यधाम में माँ अविलम्ब धरे॥ 10॥
वांछित फलदात्री चिन्तामणि सदृश मात! तेरा,
वन्दन करने वाले मुझको मिले पता मेरा।
बोधि, समाधि, विशुद्ध भावना, आत्मसिद्धि मुझको,
मिले और मैं पा जाऊँ माँ! मोक्ष महा सुख को॥ 11॥
सब मुनिराजों के समूह भी जिनका ध्यान करें,

सुरों-नरों के सारे स्वामी जिन गुणगान करें।
वेद, पुराण, शास्त्र भी जिनके गीतों के डेरे,
वे देवों के देव विराजें उर में ही मेरे॥12॥
जो अनन्त-दृग-ज्ञान स्वरूपी सुख-स्वभाव वाले,
भव के सभी विकारों से भी जो रहे निराले।
जो समाधि के विषयभूत हैं परमातम नामी,
वे देवों के देव विराजें मम उर में स्वामी॥ 13॥
जो भव दुख का जाल काट कर उत्तम सुख वरते,
अखिल-विश्व के अन्तःस्थल का अवलोकन करते।
जो निज में लवलीन हुए प्रभु ध्येय योगियों के,
वे देवों के देव विराजे मम उर के होके॥ 14॥
मोक्षमार्ग के जो प्रतिपादक सब जग उपकारी,
जन्म मरण के संकटादि से रहित निर्विकारी।
त्रिलोकदर्शी दिव्य शरीरी सब कलंकनाशी,
वे देवों के देव रहे मम उर में अविनाशी॥ 15॥
आलिंगित हैं जिनके द्वारा जग के सब प्राणी,
वे रागादिक दोष न जिनके सर्वोत्तम ध्यानी।
इन्द्रिय-रहित परम-ज्ञानी जो अविचल अविनाशी,
वे देवों के देव रहें मम उर के ही वासी॥ 16॥
जग कल्याणी परिणति से जो व्यापक गुण-राशी,
भावी-सिद्ध, विशुद्ध, जिनेश्वर, कर्म-पाप-नाशी।
जिसने ध्येय बनाया उसके सकल-दोष-हारी,
वे देवों के देव रहें मम उर में अविकारी॥ 17॥
कर्म कलंक दोष भी जिनको कभी न छू पाते,

ज्यों रवि के सन्मुख न कभी भी तम समूह आते।
नित्य निरंजन जो अनेक हैं और एक भी हैं,
उन अरहंतदेव की मैंने सुखद शरण ली है॥ 18॥
जगतप्रकाशक जिनके रहते सूर्य प्रभाधारी,
किंचित भी न शोभा पाता जिनवर अविकारी।
निज आतम में हैं जो सुस्थित ज्ञान-प्रभाशाली,
उन अरहंतदेव की मैंने सुखद शरण पा ली॥ 19॥
जिनका दर्शन पा लेने पर प्रकट झलक आता,
अखिल विश्व से भिन्न आतमा जो शाश्वत ज्ञाता।
शुद्ध, शान्त, शिवरूप आदि या अन्तविहीन बली,
उन अरहंतदेव की मुझको अनुपम शरण मिली॥ 20॥
जो मद, मदन, ममत्व, शोक, भय, चिन्ता, दुख, निद्रा,
जीत चुके हैं जिन पौरुष को कहती जिन-मुद्रा।
ज्यों दावानल तरु-समूह को शीघ्र जला देता,
उन अरहंतदेव की मैं भी सुखद शरण लेता॥ 21॥
ना पलाल पाषाण न धरती हैं संस्तर कोई,
ना विधिपूर्वक रचित काठ का पाटा भी कोई।
कारण, इन्द्रिय वा कषाय-रिपु जीते जो ध्यानी,
उसका आतम ही शुचि संस्तर माने सब ज्ञानी॥ 22॥
ना समाधि का साधन संस्तर न ही लोक-पूजा,
ना मुनि-संघों का सम्मेलन या कोई दूजा।
इसीलिये हे भद्र! सदा तुम आतमलीन बनो,
तज बाहर ही सभी वासना कुछ ना कहो-सुनो॥ 23॥
पर-पदार्थ कोई ना मेरे, थे, होंगे, ना हैं,

और कभी उनका त्रिकाल में हो पाऊँगा मैं।
ऐसा निर्णय करके पर के चक्कर को छोड़ो,
स्वस्थ रहो नित भद्र! मुक्ति से तुम नाता जोड़ो॥ 24॥
तुम अपने में अपना दर्शन करने वाले हो,
दर्शन-ज्ञानमयी शुद्धातम पर से न्यारे हो।
जहाँ कहीं भी बैठे मुनिवर अविचल मन-धारी,
वहीं समाधि लगे उनकी जो उनको अति-प्यारी॥ 25॥
नित एकाकी मेरा आतम नित अविनाशी है,
निर्मल दर्शन-ज्ञानस्वरूपी स्व-पर-प्रकाशी है।
देहादिक या रागादिक जो कर्म-जनित दिखते,
क्षणभंगुर हैं वे सब मेरे कैसे हो सकते॥ 26॥
जहाँ देह से नहीं एकता जो जीवनसाथी,
वहाँ मित्र सुत वनिता कैसे हों मेरे साथी।
इस काया के ऊपर से यदि चर्म निकल जाये,
रोमछिद्र तब कैसे इसके बीच ठहर पाये॥ 27॥
भव वन में संयोगों से यह संसारी-प्राणी,
भोग रहा है कष्ट अनेकों कह न सके वाणी।
अतः त्याज्य है मन वच तन से वह संयोग सदा,
उसको, जिसको इष्ट हितैषी मुक्ति विगत विपदा॥ 28॥
भव वन में पड़ने के कारण हैं विकल्प सारे,
उनका जाल हटाकर पहुँचों शिवपुर के द्वारे।
अपने शुद्धातम का दर्शन तुम करते-करते,
लीन रहो परमात्म-तत्त्व में दुःखों को हरते॥ 29॥
किया गया जो कर्म पूर्व में स्वयं जीव द्वारा,

उसका ही फल मिले शुभाशुभ अन्य नहीं चारा।
औरों के कारण यदि प्राणी सुख-दुख को पाता,
तो निज कर्म अवश्य स्वयं ही निष्फल हो जाता॥ 30॥
अपने अर्जित कर्म बिना इस प्राणी को जग में,
कोई अन्य न सुख दुख देता कहीं किसी डग पे।
ऐसा अडिग विचार बना कर तुम निज को मोड़ो,
अन्य मुझे सुख-दुख देता है ऐसी हठ छोड़ो॥ 31॥
परमातम सबसे न्यारे हैं, अतिशय अविकारी,
सन्त 'अमितगति' से वन्दित हैं शम दम समधारी।
जो भी भव्य मनुज प्रभुवर को नित उर में लाते,
वे निश्चित ही उत्तम वैभव मोक्ष महल पाते॥ 32॥
जो ध्याता जगदीश को, ले यह पद बत्तीस।
अचल-चित्त होकर वही, बने अचलपद ईश॥ 33॥

===

क्षमा प्रार्थना

किया अपराध जो मैंने, तुम्हारे जाने अनजाने।
क्षमा करना सभी मुझको, क्षमा करता सभी जन को॥
सभी से मित्रता मेरे, किसी से बैर ना क्षण को।
यही है भावना मेरी, जिनेश्वर हो कृपा तेरी॥
किया उपयोग से छेदन, रहा हो भाव में वेदन।
उन्हीं को त्यागता हूँ मैं, रहे जो भाव वह मुझमें॥
क्षमा करना क्षमा करना, ना दिल में रोष को धरना।
शुद्ध दिल से माँगता हूँ, क्षमा भावों से झुकता हूँ॥

===

आलोचना-पाठ

(दोहा)

वंदौं पांचों परम गुरु, चौबीसों जिनराज।
करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरण के काज॥

(सखी)

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी।
तिनकी अब निर्वृत्ति काजा, तुम सरन लही जिनराजा॥1॥
इक वे ते चउ इन्द्री वा, मनरहित-सहित जे जीवा।
तिनकी नहिं करुणा धारी, निरदइ ह्वै घात विचारी॥2॥
समरंभ समारंभ आरंभ, मन वच तन कीने प्रारंभ।
कृत कारित मोदन करिकै, क्रोधादि चतुष्टय धरिकै॥3॥
शत आठ जु इमि भेदन तैं, अघ कीने परिछेदन तैं।
तिनकी कहुं कोलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी॥4॥
विपरीत एकांत विनय के, संशय अज्ञान कुनय के।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जाय कहीने॥5॥
कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदयाकरि भीनी।
या विधि मिथ्यात बढ़ायो, चहुंगतिमधिदोष उपायो॥6॥
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, परवनिता सों दृगजोरी।
आरंभ परिग्रह भीनो, पन पाप जु या विधि कीनो॥7॥
सपरस रसना घ्राननको, चखु कान विषय-सेवनको।
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय अन्याय न जाने॥8॥
फल पंच उदम्बर खाये, मधु मांस मद्य चित चाये।
नहिं अष्ट मूलगुण धारे, विसयन सेये दुखकारे॥9॥

दुइबीस अभख जिन गाये, सो भी निशदिन भुंजाये।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों-त्यों करि उदर भरायो ॥10॥
अनंतानुबंधी जु जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोडश गुनिये ॥11॥
परिहास अरति रति शोग, भय ग्लानि तिवेद संयोग।
पनवीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम ॥12॥
निद्रावश शयन कराई, सुपने मधि दोष लगाई।
फिर जागि विषय-वनधायो, नानाविध विष-फल खायो ॥13॥
आहार विहार निहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
बिन देखी धरी उठाई, बिन सोधी वस्तु जु खाई ॥14॥
तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकलप उपजायो।
कछु सुधि बुधि नाहिं रही है, मिथ्यामति छाय गयी है ॥15॥
मरजादा तुम ढिंग लीनी, ताहू में दोस जु कीनी।
भिनभिन अब कैसे कहिये, तुम ज्ञानविषैं सब पइये ॥16॥
हा हा! मैं दुठ अपराधी, त्रसजीवन राशि विराधी।
थावर की जतन न कीनी, उरमें करुना नहिं लीनी ॥17॥
पृथिवी बहु खोद कराई, महलादिक जागां चिनाई।
पुनि बिनगाल्यो जलढोल्यो, पंखातैं पवन बिलोल्यो ॥18॥
हा हा! मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु विदारी।
तामधि जीवन के खंदा, हम खाये धरि आनंदा ॥19॥
हा हा! परमाद बसाई, बिन देखे अगनि जलाई।
तामधि जे जीव जु आये, ते हू परलोक सिधाये ॥20॥

बींध्यो अन राति पिसायो, ईंधन बिन-सोधि जलायो।
झाड़ू ले जागां बुहारी, चिंवट्याऽदिक जीव बिदारी ॥21॥
जल छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि-डारि जु दीनी ॥
नहिं जल-थानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई ॥22॥
जलमल मोरिन गिरवायो, कृमिकुल बहुघात करायो।
नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये ॥23॥
अन्नादिक शोध कराई, तामें जु जीव निसराई।
तिनका नहिं जतन कराया, गलियारैं धूप डराया ॥24॥
पुनि द्रव्य कमावन काजे, बहु आरंभ हिंसा साजे।
किये तिसनावश अघ भारी, करुना नहिं रंच विचारी ॥25॥
इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्री भगवंता।
संतति चिरकाल उपाई, व ानी तैं कहिय न जाई ॥26॥
ताको जु उदय अब आयो, नानाविध मोहि सतायो।
फल भुँजत जिय दुख पावै, वचतैं कैसें करि गावै ॥27॥
तुम जानत केवलज्ञानी, दुख दूर करो शिवथानी।
हम तो तुम शरण लही है जिन तारन विरद सही है ॥28॥
इक गांवपती जो होवे, सो भी दुखिया दुख खोवै।
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुख मेटहु अन्तरजामी ॥29॥
द्रोपदिको चीर बढ़ायो, सीता प्रति कमल रचायो।
अंजन से किये अकामी, दुख मेटो अन्तरजामी ॥30॥
मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद सम्हारो।
सब दोषरहित करि स्वामी, दुख मेटहु अन्तरजामी ॥31॥

इंद्रादिक पद नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊं।
रागादिक दोष हरीजे, परमातम निजपद दीजे ॥32 ॥

(दोहा)

दोष रहित जिनदेवजी, निजपद दीज्यो मोय।
सब जीवन के सुख बढ़ै, आनंद-मंगल होय ॥1 ॥
अनुभव माणिक पारखी, 'जौहरी' आप जिनन्द।
ये ही वर मोहि दीजिये, चरन-शरन आनन्द ॥2 ॥

===

बारह भावना

(दोहा)

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार ॥1 ॥
दल बल देवी देवता, मात-पिता परिवार।
मरती बिरियां जीव को, कोऊ न राखन हार ॥2 ॥
दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान।
कबहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान ॥3 ॥
आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
यो कबहूँ इस जीव को, साथी सगा न कोय ॥4 ॥
जहाँ देह अपनी नहीं, तहां न अपना कोय।
घर सम्पत्ति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय ॥5 ॥
दिपै चाम-चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह ॥6 ॥
मोह नींद के जोर, जगवासी घूमें सदा।
कर्म चोर चहुं ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं ॥7 ॥

सतगुरु देय जगाय, मोहनींद जब उपशमैं।
तब कछु बनहिं उपाय, कर्म चोर आवत रुकैं॥8॥
ज्ञान-दीप तप-तेल भर, घर शोधै भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसैं नहीं, बैठे पूरब चोर॥9॥
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार॥10॥
चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादि तैं, भरमत हैं बिन ज्ञान॥12॥
धन कन कंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान॥13॥
जांचे सुर-तरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन।
बिन जांचे बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन॥14॥

===

बारह भावना (मंगतराय जी)

(दोहा)

वंदूँ श्री अरहंत पद, वीतराग विज्ञान।
वरणूँ बारह भावना, जग जीवन हित जान॥1॥

(विष्णु)

कहाँ गये चक्री जिन जीता, भरत खण्ड सारा।
कहाँ गये वह राम-रु-लक्ष्मण, जिन रावण मारा॥
कहाँ कृष्ण रुक्मिणी सतभामा, अरु संपति सगरी।
कहाँ गये वह रंगमहल अरु, सुवरन की नगरी॥2॥
नहीं रहे वह लोभी कौरव, जूझ मरे रन में।
गये राज तज पांडव वन को, अगनि लगी तन में॥

मोह-नींद से उठ रे चेतन, तुझे जगावन को।
हो दयाल उपदेश करैं, गुरु बारह भावन को॥ 3॥

1. अनित्य भावना

सूरज चाँद छिपै निकलै ऋतु, फिर फिर कर आवै।
प्यारी आयु ऐसी बीतै, पता नहीं पावै॥
पर्वत-पतित-नदी-सरिता-जल, बहकर नहिं हटता।
स्वास चलत यों घटै काठ ज्यों, आरे सों कटता॥ 4॥
ओस-बूंद ज्यों गले धूप में, वा अंजुलि पानी।
छिन-छिन यौवन छीन होत है, क्या समझै प्रानी॥
इंद्रजाल आकाश नगर सम, जग-संपति सारी।
अथिर रूप संसार विचारो, सब नर अरु नारी॥ 5॥

2. अशरण भावना

काल-सिंह ने मृग-चेतन को घेरा भव-वन में।
नहीं बचावन-हारा कोई, यों समझो मन में॥
मंत्र यंत्र सेना धन संपति, राज पाट छूटे।
वश नहिं चलता काल लुटेरा, काय नगरि लूटे॥ 6॥
चक्ररत्न हलधर सा भाई, काम नहीं आया।
एक तीर के लगत कृष्ण की विनश गई काया॥
देव धर्म गुरु शरण जगत में, और नहीं कोई।
भ्रम से फिरै भटकता चेतन, यूं ही उमर खोई॥ 7॥

3. संसार भावना

जनम-मरन अरु जरा- रोग से, सदा दुःखी रहता।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव-परिवर्तन सहता॥
छेदन भेदन नरक पशूगति, वध बंधन सहना।

राग-उदय से दुःख सुर गति में, कहाँ सुखी रहना॥ 8॥
भोगि पुण्य फल हो इक इंद्री, क्या इसमें लाली।
कुतवाली दिनचार वही फिर, खुरपा अरु जाली॥
मानुष-जन्म अनेक विपतिमय, कहीं न सुख देखा।
पंचम गति सुख मिले शुभाशुभ को मेटो लेखा॥ 9॥

4. एकत्व भावना

जन्मै मरै अकेला चेतन, सुख-दुख का भोगी।
और किसी का क्या इक दिन, यह देह जुदी होगी॥
कमला चलत न पैंड जाय, मरघट तक परिवारा।
अपने अपने सुख को रोवैं, पिता पुत्र दारा॥ 10॥
ज्यों मेले में पंथी जन मिल नेह फिरैं धरते।
ज्यों तरुवर पै रैन बसेरा पंछी आ करते॥
कोस कोई दो कोस कोई उड़ फिर थक-थक हारै।
जाय अकेला हंस संग में, कोई न पर मारै॥ 11॥

5. अन्यत्व भावना

मोह-रूप मृग-तृष्णा जग में, मिथ्या जल चमकै।
मृग चेतन नित भ्रम में उठ उठ, दौड़े थक थककै॥
जल नहिं पावै प्राण गमावे, भटक भटक मरता।
वस्तु पराई माने अपनी, भेद नहीं करता॥ 12॥
तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी।
मिले-अनादि यतन तैं बिछुड़ै, ज्यों पय अरु पानी॥
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेद ज्ञान करना।
जौ लों पौरुष थकै न तौ लों उद्यम सों चरना॥ 13॥

6. अशुचि भावना

तू नित पोखै यह सूखे ज्यों, धोवै त्यों मैली।
निश दिन करे उपाय देह का, रोग- दशा फैली॥
मात-पिता रज-वीरज मिलकर, बनी देह तेरी।
मांस हाड़ नश लहू राध की, प्रगट व्याधि घेरी॥ 14॥
काना पौंडा पड़ा हाथ यह चूसै तो रोवै।
फलै अनंत जु धर्म ध्यान की, भूमि-विषै बोवै॥
केसर चंदन पुष्प सुगन्धित, वस्तु देख सारी।
देह परसते होय, अपावन निशदिन मल झारी॥ 15॥

7. आस्रव भावना

ज्यों सर-जल आवत मोरी त्यों, आस्रव कर्मन को।
दर्वित जीव प्रदेश गहै जब पुद्गल भरमन को॥
भावित आस्रव भाव शुभाशुभ, निशदिन चेतन को।
पाप पुण्य के दोनों करता, कारण बन्धन को॥ 16॥
पन-मिथ्यात योग- पन्द्रह द्वादश-अविरत जानो।
पंच रु बीस कषाय मिले सब, सत्तावन मानो॥
मोह-भाव की ममता टारै, पर परिणति खोते।
करै मोक्ष का यतन निरास्रव, ज्ञानी जन होते॥ 17॥

8. संवर भावना

ज्यों मोरी में डाट लगावै, तब जल रुक जाता।
त्यों आस्रव को रोकै संवर, क्यों नहिं मन लाता॥
पंच महाव्रत समिति गुप्तिकर वचन काय मन को।
दशविध-धर्म परीषह-बाईस, बारह भावनको॥ 18॥
यह सब भाव सत्तावन मिलकर, आस्रव को खोते।

सुपन दशा से जागो चेतन, कहाँ पड़े सोते॥
भाव शुभाशुभ रहित शुद्ध - भावन - संवर भावै।
डाट लगत यह नाव पड़ी मझधार पार जावै॥ 19॥

9. निर्जरा भावना

ज्यों सरवर जल रुका सूखता, तपन पड़ै भारी।
संवर रोकै कर्म निर्जरा, ह्वै सोखन हारी॥
उदय-भोग सविपाक-समय, पक जाय आम डाली।
दूजी है अविपाक पकावै, पालविषै माली॥ 20॥
पहली सबके होय नहीं, कुछ सरै काम तेरा।
दूजी करै जू उद्यम करकै, मिटे जगत फेरा॥
संवर सहित करो तप प्रानी, मिलै मुकत रानी।
इस दुलहिन की यही सहेली, जानै सब ज्ञानी॥ 21॥

10. लोक भावना

लोक अलोक आकाश माहिं थिर, निराधार जानो।
पुरुषरूप कर-कटी भये षट, द्रव्यन सों मानो॥
इसका कोई न करता हरता, अमिट अनादी है।
जीवरु पुद्गल नाचै यामैं, कर्म उपाधी है॥ 22॥
पाप पुण्य सों जीव जगत में, नित सुख दुःख भरता।
अपनी करनी आप भरै सिर, औरन के धरता॥
मोह कर्म को नाश, मेटकर सब जग की आसा।
निज पद में थिर होय लोक के, शीश करो वासा॥ 23॥

11. बोधि-दुर्लभ भावना

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरु त्रस गति पानी।
नरकाया को सुरपति तरसै सो दुर्लभ प्रानी॥

उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ, श्रावक कुल पाना।
दुर्लभ सम्यक दुर्लभ संयम, पंचम गुणठाना॥ 24॥
दुर्लभ रत्नत्रय आराधन दीक्षा का धरना।
दुर्लभ मुनिवर के व्रत पालन, शुद्ध भाव करना॥
दुर्लभ से दुर्लभ है चेतन, बोधि ज्ञान पावै।
पाकर केवलज्ञान नहीं फिर, इस भव में आवे॥ 25॥

12. धर्म भावना

धर्म अहिंसा परमो धर्मः ही सच्चा जानो।
जो पर को दुख दे, सुख माने, उसे पतित मानो॥
राग द्वेष मद मोह घटा आतम रुचि प्रकटावे।
धर्म-पोत पर चढ़ प्राणी भव-सिन्धु पार जावे॥ 26॥
वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन, श्रीजिन की वानी।
सप्त तत्त्व का वर्णन जा में, सबको सुखदानी॥
इनका चिंतवन बार-बार कर, श्रद्धा उर धरना।
'मंगत' इसी जतनतैं इक दिन, भव-सागर-तरना॥ 27॥

===

आत्म स्वरूप चिंतन (ध्यान सूत्र)

शुद्धोऽहं।	बुद्धोऽहं।
निरंजनोऽहं।	प्रशांतोऽहं।
आनंद रूपोऽहं।	नित्यानंद स्वरूपोऽहं।
अनंत स्वरूपोऽहं।	त्रय शल्य रहितोऽहं।
केवलज्ञान स्वरूपोऽहं।	भावकर्म रहितोऽहं।
स्पर्श-रस-गंध रहितोऽहं।	वर्ण रहितोऽहं।
मिथ्यात्व रहितोऽहं।	सोऽहं। सोऽहं। सोऽहं।

===

चिंतनीय भावना

(जोगीरासा/नरेन्द्र)

भव वन में जी भर घूम चुका, कण-कण को जी भर-भर देखा।
मृग-सम मृग-तृष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेख ॥1 ॥
झूठे जग के सपने सारे, झूठी मन की सब आशायें।
तन जीवन यौवन अस्थिर है, क्षणभंगुर पल में मुरझायें ॥2 ॥
सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या।
अशरण मृत-काया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या ॥3 ॥
संसार महादुख सागर के, प्रभु दुखमय सुख आभासों में।
मुझको न मिला सुख क्षणभर भी, कंचन कामिनी प्रासादों में ॥4 ॥
मैं एकाकी एकत्व लिये एकत्व लिये सब ही आते।
तन धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड़ चले जाते ॥5 ॥
मेरे न हुए ये मैं इनसे, अति भिन्न अखण्ड निराला हूँ।
निज में पर से अन्यत्व लिये, निज सम रस पीने वाला हूँ ॥6 ॥
जिसके शृंगारों में मेरा, यह महंगा जीवन घुल जाता।
अत्यन्त अशुचि जड़ काया से, इस चेतन का कैसा नाता ॥7 ॥
दिन-रात शुभाशुभ भावों से मेरा, व्यापार चला करता।
मानस वाणी और काया से, आस्रव का द्वार खुला रहता ॥8 ॥
शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अन्तस्तल।
शीतल समकित किरणें फूटें, संवर से जागे अन्तर्बल ॥9 ॥
फिर तप की शोधक वह्नि जगे, कर्मों की कड़ियाँ टूट पड़े।
सर्वांग निजात्म प्रदेशों से, अमृत के निर्झर फूट पड़े ॥10 ॥
हम छोड़ चलें यह लोक सभी, लोकान्त विराजें क्षण में जा।
निज लोक हमारा वासा हो, शोकान्त बनें फिर हमको क्या ॥11 ॥

जागे मम दुर्लभ बोधि प्रभो!, दुर्नयतम सत्वर टल जावे।
बस ज्ञाता दृष्टा रह जाऊँ, मद-मत्सर-मोह विनश जावे ॥12 ॥
चिर रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी।
जग में हमारा कोई था, हम भी न रहें जग के साथी ॥13 ॥
चरणों में आया हूँ प्रभुवर, शीतलता मुझको मिल जावे।
मुरझाई ज्ञान लता मेरी, निज अन्तर्बल से खिल जावे ॥14 ॥
सोचा करता हूँ भोगों से, बुझ जावेगी इच्छा ज्वाला।
परिणाम निकलता है लेकिन, मानों पावक में घी डाला ॥15 ॥
तेरे चरणों की पूजा से, इन्द्रिय सुख की ही अभिलाषा।
अब तक न समझ ही पाया प्रभु! सच्चे सुख की भी परिभाषा ॥16 ॥
तुम तो अविकारी हो प्रभुवर! जग में रहते जग से न्यारे।
अतएव झुके तव चरणों में, जग के माणिक मोती सारे ॥17 ॥
स्याद्वादमयी तेरी वाणी, शुभनय के झरने झरते हैं।
उस पावन नौका पर लाखों, प्राणी भव वारिधि तिरते हैं ॥18 ॥
हे गुरुवर! शास्वत सुख दर्शक, यह नग्न स्वरूप तुम्हारा है।
जग की नश्वरता का सच्चा, दिग्दर्शन करने वाला है ॥ ॥19 ॥
जब जग विषयों में रच-पच कर, गाफिल निद्रा में सोता हो।
अथवा वह शिव के निष्कंटक, पथ में विष-कंटक बोता हो ॥20 ॥
हो अर्ध निशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों।
तब शान्त निराकुल मानस तुम, तत्त्वों का चिंतन करते हो ॥21 ॥
करते तप शैल नदी तट पर, तरु तल वर्षा की झड़ियों में।
समता रस पान किया करते, सुख दुख दोनों की घड़ियों में ॥22 ॥
अन्तर ज्वाला हरती वाणी, मानों झड़ती हों फलझड़ियाँ।
भव बन्धन तड़ तड़ टूट पड़े, खिल जावें अन्तर की कलियाँ ॥23 ॥

तुम सा दानी क्या कोई हो, जग को दे दीं जग की निधियाँ।
दिन रात लुटाया करते हो, सम-शम की अविनश्वर मणियाँ ॥24 ॥
हे निर्मल देव! तुम्हें प्राण, हे ज्ञानदीप आगम! प्रणाम।
हे शान्ति त्याग के मूर्तिमान, शिव-पथ पंथी गुरुवर! प्रणाम ॥25 ॥

अमूल्य तत्त्व विचार

बहु पुण्य पुंज प्रसंग से, शुभ देह मानव का मिला।
तो भी अरे भव-चक्र का, फेरा न एक कभी टला ॥1 ॥
सुख प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते, सुक्ख जाता दूर है।
तू क्यों भयंकर भाव मरण, प्रवाह में चकचूर है ॥2 ॥
लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिये।
परिवार और कुटुम्ब है क्या, वृद्धि कुछ नहीं मानिये ॥3 ॥
संसार का बढ़ना तुझको अरे!, नरदेह की यह हार है।
नहीं एक क्षण तुझको अरे!, इसका विवेक विचार है ॥4 ॥
निर्दोष सुख निर्दोष आनंद, लो जहाँ भी प्राप्त हो।
वह दिव्य अंतः तत्त्व जिससे, बंधनों से मुक्त हो ॥5 ॥
पर-वस्तु में मूर्छित न हो, इसकी रहे मुझको दया।
वह सुख सदा ही त्याज्य रे, पश्चात् जिसके दुख भरा ॥6 ॥
मैं कौन हूँ आया कहाँ से, और मेरा रूप क्या।
संबंध दुखमय कौन है?, स्वीकृत करूँ परिहार क्या? ॥7 ॥
इसका विचार विवेकपूर्वक, शान्त होकर पीजिये।
तो सर्व आत्मिक ज्ञान के, सिद्धान्त का रस पीजिये ॥8 ॥
जिसका वचन उस तत्त्व की, उपलब्धि में शिवभूत है।
निर्दोष नर का वचन रे, वह स्वानुभूति प्रसूत है ॥9 ॥
तारो अहो तारो निजात्मा, शीघ्र अनुभव कीजिये।
सर्वात्म में समदृष्टि दो यह, वच हृदय लख लीजिये ॥10 ॥

===

वैराग्य भावना

(दोहा)

बीज राख फल भोगवै, ज्यों किसान जग माहिं।
त्यों चक्री नृप सुख करै, धर्म बिसारै नाहिं॥ 1॥

(जोगीरासा/नरेन्द्र)

इह विधि राज करै नरनायक, भोगे पुण्य विशालो।
सुख सागर में रमत निरन्तर, जात न जान्यो कालो॥
एक दिवस शुभ कर्म-संजोगे, क्षेमंकर मुनि वंदे।
देखि शिरीगुरु के पदपंकज, लोचन अलि आनन्दे॥ 2॥
तीन प्रदच्छन दे सिर नायो, करि पूजा थुति कीनी।
साधु-समीप विनय कर बैठ्यो, चरनन में दिठि दीनी॥
गुरु उपदेश्यो धरम - शिरोमणि, सुन राजा वैरागे।
राजरमा, वनितादिक, जे रस, ते रस बेरस लागे॥ 3॥
मुनि- सूरज कथनी किरणावलि लगत भरम बुधि भागी।
भव-तन-भोग-स्वरूप विचार्‌यो, परम धरम अनुरागी॥
इह संसार महावन भीतर, भरमत ओर न आवै।
जामन मरन जरा दव दाझै जीव महादुख पावै॥ 4॥
कबहूँ जाय नरक थिति भुंजै, छेदन भेदन भारी।
कबहूँ पशु परजाय धरै तहँ, वधबन्धन भयकारी॥
सुरगति में परसम्पति देखे राग उदय दुख होई।
मानुष योनि अनेक विपतिमय, सर्वसुखी नहिं कोई॥ 5॥
कोई इष्ट वियोगी विलखै, कोई अनिष्ट संयोगी।
कोई दीन-दरिद्री विलखे, कोई तन का रोगी॥

किसही घर कलिहारी नारी, कै बैरी सम भाई।
किसही के दुख बाहिर दीखें, किसही उर दुचिताई॥ 6॥
कोई पुत्र बिना नित झूरै, होय मरै तब रोवै।
खोटी संततिसों दुख उपजै, क्यों प्रानी सुख सोवै॥
पुण्य उदय जिनके तिनके भी नाहिं सदा सुख साता।
यो जगवास जथारथ देखें, सब दीखै दुखदाता॥ 7॥
जो संसार विषैं सुख होता, तीर्थङ्कर क्यों त्यागै।
काहे को शिवसाधन करते, संजमसों अनुरागै॥
देह अपावन अथिर घिनावन, यामें सार न कोई।
सागर के जलसों शुचि कीजे, तो भी शुद्ध न होई॥ 8॥
सात कुधातु भरी मल-मूरत, चर्म लपेटी सोहै।
अन्तर देखत या सम जग में, अवर अपावन को है॥
नव-मल-द्वार स्रवैं निशि-वासर, नाम लिये घिन आवै।
व्याधिउपाधि अनेक जहाँतहँ, कौन सुधी सुखपावै॥ 9॥
पोषत तो दुःख दोष करै अति, सोषत सुख उपजावै।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै॥
राचन-जोग स्वरूप न याको विरचन - जोग सही है।
यह तन पाय महातप कीजे यामें सार यही है॥ 10॥
भोग बुरे भव रोग बढ़ावै, बैरी हैं जग जीके।
बेरस होंय विपाक समय अति, सेवत लागैं नीके॥
वज्र-अगिनि विषसे विषधर से, ये अधिके दुखदाई।
धर्म-रतन के चोर चपल अति, दुर्गति- पंथ सहाई॥ 11॥
मोह-उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानै।

ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब कंचन माने॥
ज्यों ज्यों भोग संजोग मनोहर, मन-वांछित जन पावै।
तृष्णा नागिन त्यों-त्यों डंके, लहर जहर की आवे॥ 12॥
मैं चक्री पद पाय निरन्तर, भोगे भोग घनेरे।
तौ भी तनिक भये नहिं पूरन, भोग मनोरथ मेरे॥
राजसमाज महा अघ - कारण, बैर बढ़ावन-हारा।
वेश्या सम लक्ष्मी अति चंचल, या का कौन पत्यारा॥ 13॥
मोह-महा-रिपु बैर विचार्यो, जग-जिय संकट डारे।
घर-कारागृह वनिता बेड़ी, परिजन जन रखवारे॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप, ये जियके हितकारी।
ये ही सार असार और सब, यह चक्री चितधारी॥ 14॥
छोड़े चौदह रतन नवों निधि, अरु छोड़े संग साथी।
कोटि अठारह घोड़े छोड़े, चौरासी लख हाथी॥
इत्यादिक संपति बहुतेरी, जीरण-तृण-सम त्यागी।
नीति विचार नियोगी सुतकों, राज दियो बड़भागी॥ 15॥
होय निशल्य अनेक नृपति संग, भूषण वसन उतारे।
श्री गुरु चरण धरी जिनमुद्रा, पंच महाव्रत धारे॥
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरज धारी।
ऐसी सम्पति छोड़ बसे वन, तिन पद धोक हमारी॥ 16॥

(दोहा)

परिग्रहपोट उतार सब, लीनों चारित पंथ।
निज स्वभाव में थिर भये, वज्रनाभि निरग्रंथ॥

===

मेरी-भावना

(ज्ञानोदय)

जिसने रागद्वेष कामादिक जीते सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्षमार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया॥
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो॥ 1॥
विषयों की आशा नहिं, जिनके साम्य भाव धन रखते हैं।
निज पर के हित साधन में जो, निशदिन तत्पर रहते हैं।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुख समूह को हरते हैं॥ 2॥
रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन्हीं जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे॥
नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करूँ।
परधन वनिता पर न लुभाऊँ , संतोषामृत पिया करूँ॥ 3॥
अहंकार का भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या-भाव धरूँ॥
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूँ।
बने जहाँ तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूं॥ 4॥
मैत्री भाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे।
दीन - दुखी जीवों पर मेरे उर से करुणा स्त्रोत बहे॥
दुर्जन क्रूर - कुमार्ग रतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रक्खूँ मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे॥ 5॥
गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे॥

होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे॥ 6॥
कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊं या, मृत्यु आज ही आ जावे॥
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे।
तो भी न्याय-मार्ग से मेरा, कभी न पग डिगने पावे॥ 7॥
होकर सुख में मग्न न फूलै दुख में कभी न घबरावे।
पर्वत नदी श्मशान-भयानक, अटवी से नहिं भय खावे॥
रहे अडोल - अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्टवियोग अनिष्टयोग में, सहनशीलता दिखलावे॥ 8॥
सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।
बैर - पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे॥
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत-दुष्कर हो जावे।
ज्ञानचरित उन्नत कर अपना, मनुजजन्म फल सब पावे॥ 9॥
ईति-भीति व्यापे नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे,
धर्म-निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।
रोग - मरी - दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे।
परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्वहित किया करे॥ 10॥
फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर ही रहा करे।
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे॥
बनकर सब 'युगवीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करे।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से, सब दुख संकट सहा करे॥11॥

===

इष्ट प्रार्थना

(शुद्ध-गीता)

हमारे कष्ट मिट जाये, नहीं यह भावना स्वामी।
डरे न संकटों से हम, यही है भावना स्वामी॥1॥
हमारा भार घट जाये, नहीं यह भावना स्वामी।
किसी पर भार न हों हम, यही है भावना स्वामी॥2॥
फले आशा सभी मन की, नहीं यह भावना स्वामी।
निराशा हो न अपने से, यही है भावना स्वामी॥3॥
बढ़े धन सम्पदा भारी, नहीं यह भावना स्वामी।
रहे संतोष थोड़े में, यही है भावना स्वामी॥4॥
दुःखों में साथ दे कोई, नहीं यह भावना स्वामी।
बने सक्षम स्वयं ही हम, यही है भावना स्वामी॥5॥
दुःखीं हो दुष्ट जन सारे, नहीं यह भावना स्वामी।
सभी दुर्जन बने सज्जन, यही है भावना स्वामी॥6॥
मनोरंजन हमारा हो, नहीं यह भावना स्वामी।
मनोभंजन हमारा हो, यही है भावना स्वामी॥7॥
रहे सुख शान्ति जीवन में, नहीं यह भावना स्वामी।
न जीवन में असंयम हो, यही है भावना स्वामी॥8॥
फले फूले नहीं कोई, नहीं यह भावना स्वामी।
सभी पर प्रेम हो उर में, यही है भावना स्वामी॥9॥
दुखों में आपको ध्यायें, नहीं यह भावना स्वामी।
कभी न आपको भूलें, यही है भावना स्वामी॥10॥

===

समाधि भावना

दिन रात मेरे स्वामी, मैं भावना ये भाऊँ।
देहांत के समय में, तुमको ना भूल जाऊँ॥1॥
शत्रु अगर कोई हो, संतुष्ट उनको कर दूँ।
समता का भाव धरके, सबसे क्षमा कराऊँ॥2॥
त्यागूँ आहार पानी, औषध विचार अवसर।
टूटे नियम ना काई, दृढ़ता हृदय में लाऊँ॥3॥
जागें नहीं कषायें, नहि वेदना सतावें।
तुमसे ही लौ लगी हो, दुर्ध्यान को हटाऊँ॥4॥
धर्मात्मा निकट हो, चर्चा धरम सुनावे।
वह सावधान रक्खे, गाफिल न होने पाऊँ॥5॥
भोगे जो भोग पहले, उनका न होवे सुमिरन।
मैं राज्य संपदा या, पद इंद्र का न चाहूँ॥6॥
जीने की हो न वांछा, मरने की हो न इच्छा।
अरिहंत सिद्ध साधु, रटना यही लगाऊँ॥7॥
रत्नत्रय का पालन, हो अंत में समाधि।
'शिवराम' प्रार्थना है, जीवन सफल बनाऊँ॥8॥

===

मेरी विनती

मिलता है सच्चा सुख केवल, भगवान् तुम्हारे चरणों में।
यह विनती है पल-पल क्षण-क्षण, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥
मिलता है सच्चा ...

चाहे बैरी कुल संसार बने, चाहे जीवन मेरा भार बने।
चाहे मौत गले का हार बने, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥
मिलता है सच्चा ...

चाहे अग्नि में मुझे जलना पड़े, चाहे काँटों पे मुझे चलना पड़े,
चाहे छोड़ के देश निकलना पड़े, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥
मिलता है सच्चा ...

जिह्वा पर तेरा नाम रहे, तेरा ध्यान सुबह और शाम रहे।
तेरी याद तो आठों याम रहे, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥
मिलता है सच्चा ...

चाहे संकट ने मुझे घेरा हो, चाहे चारों ओर अंधेरा हो।
पर मन नहीं मेरा डगमग हो, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥
मिलता है सच्चा ...

निशदिन मैं दीप जलाता हूँ, फिर भी मन में क्यों अंधेरा है।
प्रभु ज्ञानदीप हमको दे दो,रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥
मिलता है सच्चा ...

प्रभु भव सिंधु के खिवैया तुम, इस भव से पार लगा दो तुम।
स्वीकार करो आरति मेरी, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥
मिलता है सच्चा ...

===

सम्मेद-शिखर-वंदना

(दोहा)

सम्मेद शिखर वन्दूँ सदा, भाव सहित नत भाल।
कहूँ वन्दना क्षेत्र की, पाने शिव की चाल॥

(चौपाई)

प्रथम कूट है गौतम स्वामी, वन्दों गणधर पद जगनामी।
चौबीसों के परम गणीशा, चौदह सौ बावन श्री ईशा॥ 1॥
कूट ज्ञानधर कुन्थु जिनंदा, वन्दूँ मन वच मेटो फँदा।
बहुत निकट हैं पूर्ण दयालू, हो जाऊँ मैं परम कृपालू॥ 2॥
नमि जिनवर जी जग के चंदा, कूट मित्रधर सुख आनंदा।
तीन लोक के सभी जीव जी, बने मित्र मम मिटे पीव जी॥ 3॥
नाटक तजकर अर जिनस्वामी, नाटक वन्दूँ शिवपथ गामी।
चक्रवर्ति का चक्कर छोड़ा, हमने तुमसे नाता जोड़ा॥ 4॥
मल्लिप्रभु का कूट सुसंबल, बसो हृदय में मेरे पल-पल।
बाल ब्रह्म-मय विरत विरागी, बना रहूँ मैं तुम पद रागी॥ 5॥
सुरनर किन्नर संकुल पूजें, वन्दत श्रेयनाथ अघ धूजे।
समवशरण में ऐसे सोहे, नखतों में ज्यों चंदा मोहे॥ 6॥
सुप्रभ से श्री सुविधिनाथजी, वन्दूँ देना नित्य साथजी।
धवल वर्ण के चरण तुम्हारे, धवल भाव हो नाथ हमारे॥ 7॥
पद्मप्रभ का मोहन कूटा, माना जग में शिव का खूँटा।
मोह नाश कर शिव महि पाई, वंदूँ तुमको नित शिर नाई॥ 8॥
मुनिसुव्रत का कूट सुनिर्झर, वन्दत होते अघ भी झर-झर।
मुनियों में तुम श्रेष्ठ मुनी हो, चरणा नमते श्रेष्ठ गुणी औ॥9॥
चंद्रप्रभ का ललित सुहाना, वन्दूँ देना शिव का दाना।

इसी कूट से असंख्यात भी, साधु गये शिव कर्म घात ही ॥10॥
कैलाशं से आदि जिनेश्वर, वन्दूँ निशदिन हे परमेश्वर।
सहस मुनीश्वर बाहुबली भी, मोक्ष गये इह आत्म बली जी ॥11॥
शीतल जिनवर विद्युतवर से, पूजक को ये इच्छित वर दे।
पाप-ताप को शीतल करके, भक्ती से हम उर में धर लें ॥12॥
स्वयंप्रभा के नाथ अनंता, वन्दूँ मेटो दुख के कंता।
नमः सिद्ध कह दीक्षा लीनी, भव्यों को शिव शिक्षा दीनी ॥13॥
संभव शम सुख पाने हेतू, वन्दूँ धवल कूट वृष केतू।
तीनों रत्नों को पा तीजे, पहुँचे शिव में सब अघ छीजे॥ 14॥
चंपापुर से वासुपूज्य है, मन-वच-तन से करूँ पूज मैं।
पंचकल्याणक गिरि मंदारा, पाये पाँच युगल इह सारा॥ 15॥
अभिनंदन जी आनंद दाता, आनंद कूटा बहु विख्याता।
सर्व गुणों का नंदन करने, आये हम सब वंदन करने॥ 16॥
सुदत्तकूट है नाथ धर्म का, कारण है यह मोक्ष शर्म का।
धर्म पुण्य को करलो भाई, वंदत ही सब अघ नश जाई ॥17॥
सुमतिनाथ जी अविचल कूटा, गये मोक्ष ये जग से छूटा।
श्रेष्ठमती दो हमको जेष्ठा, सुर-नर वंदित वन्दूँ श्रेष्ठा॥ 18॥
शांतिप्रभ है शांति-जिनेशा, वन्दूँ तुमको हे! तीर्थेशा।
कुन्दप्रभ है दूजा नामा, नमते बनते सार्थक कामा॥ 19॥
पावापुर से श्री महावीरा, वर्द्धमान हो सन्मति धीरा।
पद्म सरोवर शिव का थाना, वन्दूँ सुख का द्वारा माना॥ 20॥
सुपार्श्वनाथ का कूट प्रभासा, चमके सूरज सम है खासा।
रोग मिटाती इसकी धूली, वन्दूँ, पाने शिव की चूली॥ 21॥

सुवीर कूट श्री विमल प्रधाना, वन्दूँ मन में धरि-धरि ध्याना।
चरण-शरण के बिन ही नाथा, भटका कर दो आज सनाथा ॥22॥
चढ़ते-चढ़ते घाटी उच्च, हाँफ गया हूँ प्रभुवर सच्च।
सिद्धिवरा है कूट अजीतं, वन्दूँ गाऊँ तुमरे गीतं॥ 23॥
ऊर्जयन्त है श्री गिरनारी, पाई तप बल से शिवनारी।
कारण हुण्डासर्पण काल, वन्दूँ नेमि जिनेश्वर चाल॥ 24॥
स्वर्ण भद्र है कूट प्रसिद्धा, पार्श्वनाथ का मानों सिद्धा।
वंदन होती पूर्ण यहाँ है, चरण गुफा में श्रेष्ठ तहाँ है॥ 25॥
एक बार भी करलो वंदन, मिट जावे फिर भव के बंधन।
तीन काल में तीन योग से, वंदूँ चरणा नित्य धोक दे॥ 26॥
विवेक सूरि की शिष्या पंचम, भव को तज गति पाने पंचम।
बार-बार ये विनती करके, फिर-फिर वन्दें उर में धरके ॥27॥

प्रशस्ति (ज्ञानोदय)

अकलंकं ने सौंदा मठ में, जिनशासन की रक्षा की।
बौद्धमती से वाद जीतकर, जैनधर्म की शिक्षा दी॥
यहीं हुई यह सिद्धक्षेत्र की, पूर्ण वंदना प्यारी है।
पढ़ो सुनो हे भव्य जनो, यदि चाहो सुख की क्यारी है॥ 28॥

(दोहा)

माघ शुक्ल की पंचमी, सूर्यवार इकतीस।
वीर मोक्ष पच्चीस सौ, पूर्ण हुई थुति ईश॥

===

महावीराष्टक स्तोत्र

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः,
समं भान्ति ध्रौव्य-व्यय-जनि लसन्तोऽन्तरहिताः।
जगत्साक्षी मार्ग-प्रकटन-परो भानुरिव यो,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)॥ 1॥

अताम्रं यच्चक्षुः कमलयुगलं स्पन्द-रहितम्,
जनान् कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि।
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥ 2॥

नमन्नाकेन्द्राली मुकुटमणि भा-जाल-जटिलम्,
लसत्पादाम्भोज-द्वयमिह यदीयं तनुभृताम्।
भवज्ज्वाला-शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥ 3॥

यदर्चा - भावेन प्रमुदित - मना दर्दुर इह,
क्षणादासीत्स्वर्गी गुण-गण-समृद्धः सुख-निधिः।
लभन्ते सद्भक्ताः शिवसुखसमाजं किमु तदा,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥ 4॥

कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगत-तनुर्ज्ञान-निवहो ,
विचित्रात्माप्येको नृपतिवरसिद्धार्थतनयः।
अजन्मापि श्रीमान् विगतभवरागोऽद्भुत-गतिर्-
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥ 5॥

यदीया वाग्गङ्गा विविधनयकल्लोलविमला,
बृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति।
इदानीमप्येषा बुधजनमरालैः परिचिता,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥ 6॥

अनिर्वारोद्रेकस् - त्रिभुवनजयी काम-सुभटः,
कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः।

स्फुरन् नित्यानन्द-प्रशम-पद-राज्याय स जिनः,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥ 7॥
महामोहातङ्क प्रशमन - पराकस्मिकभिषग्,
निरापेक्षो बन्धुर्विदित - महिमा मङ्गलकरः।
शरण्यः साधूनां भव - भयभृतामुत्तमगुणो,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥ 8॥
महावीराष्टकं स्तोत्रं, भक्त्या 'भागेन्दुना' कृतम्।
यः पठेच्छृणुयाच्चापि, स याति परमां गतिम्॥

सरस्वती स्तोत्र

सरस्वत्याः प्रसादेन, काव्यं कुर्वन्ति मानवाः।
तस्मान्निश्चल भावेन, पूजनीया सरस्वती॥ 1॥
श्री सर्वज्ञ मुखोत्पन्ना, भारती बहुभाषणी।
अज्ञान तिमिरं हन्ति, विद्या बहु विकासनी॥ 2॥
सरस्वतीमया दृष्टा, दिव्या कमललोचना।
हंसस्कन्ध समारूढ़ा, वीणा पुस्तक धारिणी॥ 3॥
प्रथमं भारती नाम, द्वितीयं च सरस्वती।
तृतीयं शारदा देवी, चतुर्थं हंसगामिनी॥ 4॥
पंचमं विदुषांमाता, षष्ठं वागीश्वरि तथा।
कुमारी सप्तमं प्रोक्तं, अष्टमं ब्रह्मचारिणी॥ 5॥
नवमं च जगन्माता, दशमं ब्राह्मिणी तथा।
एकादशं तु ब्रह्माणी, द्वादशं वरदा भवेत्॥ 6॥
वाणी त्रयोदशं नाम, भाषाचैव चतुर्दशं।
पंचदशं च श्रुतदेवी, षोडशं गौर्निगद्यते॥ 7॥
एतानि श्रुतनामानि, प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
तस्य संतुष्यति माता, शारदा वरदा भवेत्॥ 8॥
सरस्वती नमस्तुभ्यं, वरदे काम रूपिणी।
विद्यारंभं करिष्यामि, सिद्धिर्भवतु मे सदा॥ 9॥

===

वीतरागस्तोत्र

शिवं शुद्धबुद्धं परं विश्वनाथं, न देवो न बंधुर्न कर्मा न कर्ता।
न अङ्गं न सङ्गं न स्वेच्छा न कायं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥
न बन्धो न मोक्षो न रागादिदोषः, न योगं न भोगं न व्याधिर्न शोकः।
न कोपं न मानं न माया न लोभं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥
न हस्तौ न पादौ न घ्राणं न जिह्वा, न चक्षुर्न कर्णं न वक्त्रं न निद्रा।
न स्वामी न भृत्यः न देवो न मर्त्यः, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥
न जन्मं न मृत्युः न मोहं न चिंता, न क्षुद्रो न भीतो न कार्श्यं न तन्द्रा।
न स्वेदं न खेदं न वर्णं न मुद्रा, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥
त्रिदण्डे त्रिखण्डे हरे विश्वनाथं, हृषी -केशविध्वस्त- कर्मादिजालम्।
न पुण्यं न पापं न चाक्षादि-गात्रं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥
न बालो न वृद्धो न तुच्छो न मूढो, न स्वेदं न भेदं न मूर्तिर्न स्नेहः।
न कृष्णं न शुक्लं न मोहं न तंद्रा, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥
न आद्यं न मध्यं न अन्तं न चान्यत्, न द्रव्यं न क्षेत्रं न कालो न भावः।
न शिष्यो गुरुर्नापि हीनं न दीनं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥
इदं ज्ञानरूपं स्वयं तत्त्ववेदी, न पूर्णं न शून्यं न चैत्यं स्वरूपम्।
न चान्यो न भिन्नं न परमार्थमेकं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥

आत्माराम-गुणाकरं गुणनिधिं, चैतन्यरत्नाकरं,
सर्वे भूतगता गते सुखदुःखे, ज्ञाते त्वयि सर्वगे,
त्रैलोक्याधिपते स्वयं स्वमनसा, ध्यायन्ति योगीश्वराः,
वंदे तं हरिवंशहर्ष-हृदयं, श्रीमान् हृदाभ्युद्यताम्॥

===

पंच महागुरु भक्ति (प्राकृत)

मणुय णाइंद-सुर-धरिय-छत्तत्तया, पंचकल्लाण-सोक्खावली-पत्तया।
दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं, ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं॥
जेहिं झाणग्गि-बाणेहिं अइ-दड्ढयं, जम्म-जर-मरण-णयरत्तयं दड्ढयं,
जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं, ते महं दिंतु सिद्धा वरं णाणयं॥
पंच-आचार-पंचग्गि-संसाहया, बारसंगाइ-सुअ-जलहि-अवगाहया।
मोक्ख-लच्छी महंती महं ते सया, सूरिणो दिंतु मोक्खंगयासंगया॥
घोर-संसार-भीमाडवी-काणणे, तिक्ख-वियरालणह-पाव-पंचाणणे।
णट्ठ-मग्गाण जीवाण पहदेसिया, वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया॥
उग्ग तव चरण करणेहिं झीणं गया, धम्म वर झाण सुक्केक्क झाणं गया।
णिब्भरं तव सिरी ए समा लिंगया, साहवो ते महं मोक्ख पह मग्गया॥
एण थोत्तेण जो पंचगुरु वंदए, गुरुय-संसार-घण-वेल्लि सो छिंदए।
लहइ सो सिद्ध सोक्खाइ बहुमाणणं, कुणइ कम्मिंधणं पुंज पज्जालणं॥

अरुहा सिद्धा-इरिया उवझाया साहु पंचपरमेट्ठी।
एयाण-णमोयारा भवे भवे मम सुहं दिंतु॥

इच्छामि भंते! पंचमहागुरु-भत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, अट्ठ-महा-पाडिहेर-संजुत्ताणं अरिहंताणं, अट्ठ-गुण-संपण्णाणं उड्ढ-लोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं, अट्ठ-पवयण-मउ-संजुत्ताणं आयरियाणं, आयारादि-सुद-णाणो-वदेसयाणं, उवज्झायाणं, ति-रयण गुण पालणरयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं, अञ्चेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-संपत्ति होदु मज्झं।

पञ्चमहागुरुभक्ति

(चौपाई)

सुरपति शिर पर किरीट धारा, जिसमें मणियाँ कई हजारा।
मणि की द्युतिजल से धुलते हैं, प्रभु पद-नमता सुख फलते हैं॥ 1॥
सम्यक्त्वादिक वसु-गुण धारे,वसु-विध विधि-रिपु नाशन-हारे।
अनेक-सिद्धों को नमता हूँ, इष्ट-सिद्धि पाता समता हूँ॥ 2॥
श्रुत-सागर को पार किया है, शुचि संयम का सार लिया है।
सूरीश्वर के पदकमलों को, शिर पर रख लूँ दुःख-दलनों को॥ 3॥
उन्मार्गी के मद-तम हरते, जिनके मुख से प्रवचन झरते।
उपाध्याय ये सुमरण कर लूँ, पाप नष्ट हो सु-मरण कर लूँ॥ 4॥
समदर्शन के दीपक द्वारा, सदा प्रकाशित बोध सुधारा॥
साधु चरित के ध्वजा कहाते, दे-दे मुझको छाया तातैं॥ 5॥
विमल गुणालय-सिद्धजिनों को, उपदेशक मुनि-गणी गणों को॥
नमस्कार पद पञ्च इन्हीं से, त्रिधा नमूँ शिव मिले इसी से॥ 6॥
नमस्कार वर मन्त्र यही है, पाप नसाता देर नहीं है।
मंगल-मंगल बात सुनी है, आदिम मंगल-मात्र यही है॥ 7॥
सिद्ध शुद्ध हैं जय अरहन्ता, गणी पाठका जय ऋषि संता।
करें धरा पर मंगल साता, हमें बना दें शिव सुख धाता॥ 8॥
सिद्धों को जिनवर चन्द्रों को, गण नायक पाठक वृन्दों को।
रत्नत्रय को साधु जनों को, वन्दूँ पाने उन्हीं गुणों को॥ 9॥
सुरपति चूड़ामणि-किरणों से, लालित सेवित शतों दलों से।
पाँचों परमेष्ठी के प्यारे, पादपद्म ये हमें सहारे॥10॥
महाप्रतिहार्यों से जिनकी, शुद्ध गुणों से सुसिद्ध गण की।

अष्ट मातृकाओं से गणि की, शिष्यों से उपदेशक गण की॥
वसु विध योगांगों से मुनि की, करूँ सदा थुति शुचि से मन की॥ 11॥

अञ्चलिका (दोहा)

पञ्चमहागुरु भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ, ले प्रभु तव संसर्ग॥ 1॥

(चौपाई)

लोक शिखर पर सिद्ध विराजे, अगणित गुणगण मण्डित हैं।
प्रातिहार्य आठों से मण्डित, जिनवर पण्डित-पण्डित हैं॥
पञ्चाचारों रत्नत्रय से, शोभित हो आचार्य महा।
शिव पथ चलते और चलाते, औरों को भी आर्य यहाँ॥ 2॥
उपाध्याय उपदेश सदा दे, चरित बोध का शिव पथ का।
रत्नत्रय पालन में रत हो, साधु सहारा जिनमत का॥
भाव भक्ति से चाव शक्ति से, निर्मल कर-कर निज मन को।
वंदूँ पूजूँ अर्चन कर लूँ, नमन करूँ मैं गुरुगण को॥ 3॥
कष्ट दूर हो कर्म चूर हो, बोधि लाभ हो सद्गति हो।
वीर-मरण हो जिनपद मुझको, मिले सामने सन्मति ओ!॥4॥

===

योगिभक्ति

(चौपाई)

नरक-पतन से भीत हुए हैं जाग्रत-मति हैं मथित हुए।
जनन-मरण-मय शत-शत रोगों,से पीड़ित हैं व्यथित हुए॥
बिजली बादल-सम वैभव है जल-बुदबुद-सम जीवन है।
यूँ चिन्तन कर प्रशम हेतु मुनि वन में काटे जीवन है॥ 1॥

गुप्ति-समिति-व्रत से संयुत जो मन शिव-सुख की ओर रहा।
मोहभाव के प्रबल-पवन से जिनका मन ना डोल रहा॥
कभी ध्यान में लगे हुए है श्रुत-मन्थन में लीन कभी।
कर्म-मलों को धोना है सो तप करते स्वाधीन सुधी॥ 2॥
रवि-किरणों से तपी शिला पर सहज विराजे मुनिजन हैं।
विधि-बन्धन को ढीले करते जिनका मटमैला तन है॥
गिरि पर चढ़ दिनकर के अभिमुख, मुख करके हैं तप तपते।
ममत्व मत्सर मान रहित हो बने दिगम्बर-पथ नपते॥ 3॥
दिवस रहा हो रात रही हो बोधामृत का पान करें।
क्षमा नीर से सिंचित जिनका पुण्यकाय छविमान अरे!
धरें छत्र संतोष - भाव के सहज छाँव का दान करें।
यूँ सहते मुनि तीव्र-ताप को 'ज्ञानोदय' गुणगान करें॥ 4॥
मोर कण्ठ या अलि-सम काले इन्द्रधनुष युत बादल हैं।
गरजे बरसे बिजली तड़की झंझा चलती शीतल है॥
गगन दशा को देख निशा में और तपोधन तरुतल में।
रहते, सहते,कहते कुछ ना भीति नहीं मानस-तल में॥ 5॥
वर्षा ऋतु में जल की धारा मानो बाणों की वर्षा।
चलित चरित से फिर भी कब हो करते जाते संघर्षा॥
वीर रहे नर-सिंह रहे मुनि परिषह रिपु को घात रहे।
किन्तु सदा भव-भीत रहे हैं इनके पद में माथ रहे॥ 6॥
अविरल हिमकण जल से जिनकी काय-कान्ति ही चली गई।
साँय-साँय कर चली हवाएँ, हरियाली सब जली गई॥
शिशिर तुषारी घनी निशा को व्यतीत करते श्रमण यहाँ।
और ओढ़ते धृति-कम्बल हैं गनन तले भूशयन अहा!॥ 7॥

एक वर्ष में तीन योग ले बने पुण्य के वर्धक हैं।
बाह्याभ्यन्तर द्वादश-विध तप तपते हैं मद-मर्दक हैं॥
परमोत्तम आनन्द मात्र के प्यासे भदन्त ये प्यारे।
आधि-व्याधि औ उपाधि-विरहित समाधि हममें बस डारे॥ 8॥
ग्रीष्मकाल में आग बरसती गिरि-शिखरों पर रहते हैं।
वर्षा-ऋतु में कठिन परीषह तरुतल रहकर सहते हैं॥
तथा शिशिर हेमन्त काल में बाहर भू-पर सोते हैं।
वन्द्य साधु ये वन्दन करता दुर्लभ-दर्शन होते हैं॥ 9॥

अञ्चलिका (दोहा)

योगीश्वर सद्भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ ले प्रभु! तव संसर्ग॥ 1॥

(चौपाई)

अर्ध सहित दो द्वीप तथा दो सागर का विस्तार जहाँ।
कर्म-भूमियाँ पन्द्रह जिनमें संतों का संचार रहा॥
वृक्षमूल-अभ्रावकाश औ आतापन का योग धरें।
मौन धरें वीरासन आदिक, का भी जो उपयोग करें॥ 2॥
बेला, तेला, चोला, छह-ला, पक्ष, मास, छह मास तथा।
मौन रहें उपवास करें है करें न तन की दास कथा॥
भाव-भक्ति से चाव-शक्ति से निर्मल कर-कर निज मन को।
वन्दूँ, पूजूँ अर्चन कर लूँ नमन करूँ इन मुनिजन को॥ 3॥
कष्ट दूर हो, कर्म चूर हो, बोधि लाभ हो, सद्गति हो।
वीर मरण हो, जिनपद मुझको, मिले सामने सन्मति ओ!॥4॥

===